प्रकाशक
रामलाल पुरी
आत्माराम एण्ड सन्स
काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

प्रथम संस्करण १९५२
द्वितीय संस्करण १९५४
मूल्य दो रुपये

मुद्रक
श्यामकुमार गर्ग
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस
क्वीन्स रोड, दिल्ली

स्वर्गीय चाचा

श्री रघुनाथराय जी सब्बरवाल

को-सादर

प्रकाशक
रामलाल पुरी
आत्माराम एण्ड सन्स
काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

प्रथम संस्करण १९५२
द्वितीय संस्करण १९५४
मूल्य दो रुपये

मुद्रक
श्यामकुमार गर्ग
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस
क्वीन्स रोड, दिल्ली

स्वर्गीय चाचा
श्री रघुनाथराय जी सब्बरवाल
को-सादर



आमुख

सुचारु रूप से इतिहास का अध्ययन करने वाले व्यक्ति के हृदय में महाराणा प्रताप के प्रति श्रद्धा उमड़ेगी ही। यह मेरा अटूट विश्वास है। अपनी व अपने युग की परिस्थितियों और आस-पास के वातावरण से उत्पन्न विरोधी प्रवृत्तियों का उन्होंने निरन्तर सामना किया। प्रबल मुग़ल साम्राज्य से अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करना ही उनका ध्येय था। वह योद्धा थे, परम योद्धा—मृत्यु से अठखेलियाँ करने वाले। मानव थे, महान् मानव—करुणा और स्नेह से ओत-प्रोत मानवता के विशिष्ट नियमों को मानने वाले। उन्होंने राणा बनने से मृत्यु तक के पच्चीस-तीस वर्षों में अविराम संघर्ष किया। संघर्ष उनका सखा बन गया था।

प्रताप पर कुछ-न-कुछ लिखने की आकांक्षा वर्षों से मेरे हृदय में पल रही थी। सोचता रहता। और भी बहुत से ऐतिहासिक व आधुनिक समाज में रहने वाले पात्र मेरे हृदय में घर किये हुए हैं। सभी को काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी किसी-न-किसी रूप में चित्रित करना ही है। किन्तु जीवन-निर्वाहार्थ सामग्री जुटाने में ही बहुत समय व्यतीत हो जाता है। फिर भी आवश्यकतानुसार सामग्री नहीं जुट पाती जीवन में। अभावों ने गला घोंट रखा है मेरी कोमल, मधुर भावनाओं का। मैं संघर्ष में रत हूँ। आशावादी! दृढ़ विश्वास है—मेरा परिश्रम सफल होगा, विजय मेरी ही होगी। मुझे लिखना है, समय निकालना होगा। यह द्वन्द्व पिछले पाँच-छः महीनों से मेरे हृदय में मचा हुआ था।

सौभाग्य से या दुर्भाग्य से उर्मिल (मेरी पत्नी) बीमार हो गई। पिछले चार-पाँच महीने से उसका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहा। जुलाई के प्रथम सप्ताह में उसे ज्वर चढ़ा और टाइफाइड के रूप में परिवर्तित हो गया। मुझे बीमार के सहारे करना पड़ता रात का जागरण। सब काम छोड़कर दिन में भी लगभग घर ही रहना पड़ता। रोगिणी सो जाती, मैं पुस्तकें पढ़ता रहता। इतिहास में मेरी विशेष रुचि है। कई बड़ी-बड़ी

पुस्तकें पढ़ डालीं। जिनमें श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के 'उदयपुर राज्य का इतिहास' और 'राजपूताने का इतिहास' भी पढ़ने को मिले। टॉड का राजस्थान पहले पढ़ ही चुका था। किन्तु इन दिनों फिर मँगा लिया लायब्रेरी से।

प्रताप को पढ़ते हुए ज्ञात हुआ कि हल्दीघाटी के युद्ध में हाकिमख़ाँ नामक पठान प्रताप की हरावल का सेनापति था। हरावल का नेतृत्व पर्याप्त विश्वस्त व्यक्ति को ही दिया जाता है। प्रताप गुणग्राही थे, वीर थे, वीरों का सम्मान करते थे। अपने मित्रों पर उन्हें विश्वास था। वह एक प्रबल संगठनकर्ता थे, उनमें विलक्षण आकर्षण-शक्ति थी। कितने ही स्वतन्त्रता-प्रेमी राजा उनके साथ थे; जिनमें जालौर का स्वामी ताज ख़ाँ भी था। वे वंशानुगत शत्रुता के विरोधी थे। मानव थे, मानव के गुणों पर मुग्ध हो जाते थे। युवराज अमर द्वारा हरण की गई शत्रु सेनापति रहीम ख़ानख़ाना की बेगमों को उन्होंने ससम्मान रहीम के पास वापिस भेज दिया था—और युवराज को इस बात के लिए डाँटा भी। अनेकों दन्त-कथाएँ उनकी स्मृति के लिए जी रही हैं। इतिहास के पृष्ठ उस साहसी मानव की यशोगाथा कह रहे हैं।

बहुत से लेखकों ने उन पर काव्य और नाटक लिखे हैं। पर समझ में नहीं आता वह इतिहास से इतनी दूर क्यों रहे ? इतने उदार व्यक्ति के साथ एक संकुचित घेरा क्यों डाले रखा। वे देवाधिदेव महादेव के उपासक थे, परम उपासक। अपने धर्म और जाति पर गौरव करने वाले। किन्तु उन्हें इतर जातियों और धर्मों से घृणा नहीं थी।

इसी भावना से प्रेरित होकर मैंने 'मानव प्रताप' नाटक लिखना प्रारम्भ कर दिया ! पिछले तीन-चार वर्षों से नाटक मेरे जीवन का एक अंग बन गया है—आकाशवाणी के लिए एकांकी लिखना और वहाँ से प्रसारित होने वाले नाटकों में अभिनय करना। मेरे एकांकी रंगमंच पर सफलता से खेले जा सकते हैं। इन्हीं वर्षों में मैंने रंगमंच पर भी अनेकों छोटे-बड़े नाटकों में मुख्य व सहकारी भूमिका में अभिनय किया।

नाटककार होने के नाते रंगमंच का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने की आकांक्षा जिसमें निहित थी।

हिन्दी में सचमुच ही सफलतापूर्वक रंगमंच पर खेले जाने योग्य नाटक बहुत कम हैं। कारण बताते हैं लोग कि हिन्दी का रंगमंच नहीं है। पर प्रश्न है रंगमंच पर खेले जाने योग्य नाटक हों तो रंगमंच स्वयं ही बन जायगा।

मैंने 'मानव प्रताप' को रंग 'च के अनुरूप बनाने की चेष्टा की है। तीनों अंकों में एक ही जैसे दृश्य रखे गए हैं। जैसे पहले अंक में पहाड़ियों के ही सब दृश्य हैं। एक के बाद दूसरा दृश्य थोड़े से परिवर्तन के द्वारा लाया जा सकता है। दूसरे अंक में तीनों दृश्य राज-भवनों के हैं, जिनमें चित्रों, मसनदों तथा दूसरे हल्के परिवर्तनों से भिन्नता प्रकट की जा सकती है। तीसरे अंक में किलों के भीतरी भाग दिखाये हैं। इन दृश्यों को ध्वजाओं और इसी प्रकार के एक-दो अल्प परिवर्तनों से बदला जा सकता है। गीत समयानुकूल रखे गए हैं। वह भी बहुत छोटे-छोटे।

मेरे पात्र अधिकतर ऐतिहासिक हैं, किन्तु कुछेक मेरी कल्पना की उपज भी। इतिहास के गम्भीर अध्ययन के पश्चात् मैंने प्रताप के साथ-साथ पृथ्वीराज, मानसिंह, अमर इत्यादि को भी नवीन दृष्टिकोण से चित्रित करने का प्रयत्न किया है।

मुझे अधिक कुछ नहीं कहना। नाटक स्वयं बतलायगा कि मुझे अपने उद्देश्य में कहाँ तक सफलता मिली है।

वास्तव में उर्मिल धन्यवाद की अधिकारिणी है कि उसकी अस्वस्थता ने मुझे एक नाटक लिखने का अवसर दिया, अवसर ही नहीं रोगिणी का लिखवाने के प्रति आग्रह भी रहा। साथ ही मैं अपने प्रकाशक को भी धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने कि इतनी शीघ्र मेरे भावों को पाठकों के सम्मुख ला दिया।

गली रहीम वाली, कस्साबपुरा,
सदर बाजार, दिल्ली

देवराज 'दिनेश'

पात्र-परिचय

पुरुष पात्र

प्रतापसिंह	मेवाड़ के महाराणा
भामाशाह	मेवाड़ के महामात्य
मेघाजी	भीलों के सरदार
झालामाना	मेवाड़ के एक सेनापति
हाकिमख़ां	प्रताप के सहयोगी, मित्र
रामशाह	ग्वालियर के राजा, प्रताप के साथी
शक्तिसिंह	प्रताप के भाई
अमरसिंह	प्रताप के पुत्र, मेवाड़ के युवराज
अकबर	दिल्ली का बादशाह
मानसिंह	अकबर के सेनापति
रहीम	अकबर के सेनापति, कवि
पृथ्वीराज	कवि, अकबर के दरबार के रत्न
राव सुरताण	सिरोही के राजा, प्रताप के साथी
ताज ख़ां	जालोर के सुल्तान, प्रताप के साथी
वीरसिंह	प्रताप के गुप्तचर

(मंगलू, कल्ला, मुग़ल सैनिक, अमीर ख़ां, द्वारपाल इत्यादि)

नारी पात्र

प्रभामयी	प्रताप की पत्नी
किरणमयी	शक्तिसिंह की पुत्री, पृथ्वीराज की पत्नी
ज़ीनत	रहीम की पत्नी
चपला	नर्तकी
बालिका	प्रताप की पुत्री

मानव प्रताप

प्रथम अंक

प्रथम दृश्य

समय प्रभात

स्थान—अरावली पर्वतमाला में हल्दीघाटी से कुछेक
मील ऊपर महाराणा प्रताप का शिविर ।

(मानसिंह से युद्ध करने के निमित्त महाराणा प्रताप कुम्भलगढ़ को छोड़कर हल्दीघाटी की ओर बढ़ रहे हैं, चट्टानों को ही अपनी गद्दियाँ बनाकर कुछेक सरदार और महाराणा अपने भावी कार्यक्रम पर विचार कर रहे हैं—नेपथ्य में युद्ध के वाद्य बज रहे हैं, अलग-अलग सैनिकों के समूहों में से युद्ध-गीतों की ध्वनियाँ आ रही हैं ।)

प्रताप—क्यों भीलराज ! आपने अपने भील-सैनिकों के लिए क्या कुछ सोचा है ?

मेघाजी—इसमें हमारे सोचने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता महाराणा ! आपकी आज्ञा हमें सदैव शिरोधार्य है ।

प्रताप—हमें आप पर सदैव विश्वास रहा है भीलराज, और हमें पूर्ण आशा है कि हमारा यह विश्वास उत्तरोत्तर दृढ़ होता जायगा ।

मेघाजी—हमारी भगवान् एकलिंग से यही प्रार्थना है कि वह हमें दृढ़ता से अपने पथ पर चलने की शक्ति प्रदान करें !

प्रताप—देखो भीलराज, आपके भील युद्ध-क्षेत्र में जाकर आमने-सामने की लड़ाई नहीं लड़ेंगे ?

मेघाजी—(आश्चर्य से) आप कहना क्या चाहते हैं महाराणा !

प्रताप—मैं ठीक कह रहा हूँ। आपकी भील-सेना पर्वतों की चोटियों पर चढ़ी हुई, पत्थरों और तीरों से आवश्यकतानुसार शत्रु पर आक्रमण करेगी। और हम सब युद्ध-क्षेत्र में उतरेंगे।

हाकिमखाँ—महाराणा ठीक फ़रमाते हैं। हमें इस लड़ाई के बाद के लिए भी तो कुछ-न-कुछ सोचना है। महाराणा के खानदान की हिफ़ाजत की जिम्मेवारी भी तो आपकी है, समझे भीलराज ! इतनी बड़ी जिम्मेवारी का काम वहीं सौंपा जाता है जहाँ किसी की ताक़त और अक्ल पर बेहद यकीन हो।

मेघाजी—जैसी आप सबकी इच्छा। मैं और मेरे भील रक्त की अन्तिम बूँद तक आपका साथ देंगे महाराणा ! और मुझे पूर्ण विश्वास है कि हम इस परीक्षा में प्रत्येक क्षण पूर्ण उतरेंगे।

प्रताप—भगवान् एकलिंग आपका विश्वास बनाए रखें। हाँ तो साथियो, समय कम है और हमें कुछ बातें इसी समय निश्चित कर लेनी हैं। मानसिंह इस समय मुजेरा में अपनी विशाल सेनाओं के साथ पड़ा है ! हमें उसके आक्रमण की प्रतीक्षा करनी चाहिए, या उस पर स्वयं आक्रमण कर देना चाहिए, निश्चित कीजिए।

हाकिमखाँ—मेरे ख्याल से तो यह बात मौके के लिए छोड़ी जाय। इस बीती हुई रात की तरह आने वाली रात में भी कुछ सफ़र तय किया जाय।

प्रताप—लेकिन आज रात में हमें बहुत होशियारी के साथ चलना

होगा। कानों-कान भी शत्रु को पता नहीं चलना चाहिए कि हम उसके इतने अधिक निकट आ गए हैं। क्यों, रामशाह जी! आपका क्या विचार है?

रामशाह—आप ठीक कहते हैं महाराणा! वैसे भी आप इस विषय में हमसे अधिक जानते हैं। हम यहाँ के इन पहाड़ी रास्तों से भली भाँति परिचित नहीं हैं, बस इतना अवश्य जानते हैं कि हमें काल के समान चुपचाप शत्रु के सिर पर पहुँच जाना चाहिए, ताकि जब चाहें आक्रमण कर दें।

झालामाना—यही अपना भी विचार है महाराणा!

प्रताप—उचित परामर्श है। हमें आज रात खमनूर की ओर बढ़ना है और वहीं अपना शिविर डालकर अपने भावी कार्यक्रम पर विचार करना है। मानसिंह भी क्या याद करेगा कि कभी प्रताप से भी युद्ध किया था। रामशाह जी, मेरे हृदय में एक ऐसी ज्वाला धधक रही है जिसका कोई ओर-छोर नहीं। बस, अब तो उसे हल्दीघाटी का युद्ध ही बुझा सकता है।

हाकिमखां—ऐसा ही होगा महाराणा! अपने दिल में भी एक ऐसी ही आग है। (हंसते हैं) अकबर चाहता है कि सारी दुनिया उसके पैरों-तले रहे। पर मैं कहता हूँ, कोई क्यों रहे? क्या दूसरों में अपना स्वाभिमान नहीं है? क्या दूसरे अपना मस्तक गर्व से ऊँचा करके नहीं रह सकते?

रामशाह—अकबर एक दुधारी तलवार है जो अपने शत्रु को दोनों ओर से काटती है। वह बड़ा नीति-कुशल है उसकी महत्त्वाकांक्षा बहुत विस्तृत है। वह इस सारे देश का एकच्छत्र स्वामी बनना चाहता है।

मेघाजी—वह लोहे से लोहा काटना जानता है।

हाकिमखां—भीलराज ठीक कहते हैं। मैंने अपने कुछेक भेदियों के मुख से यह बात भी सुनी है। अकबर चाहता था कि मानसिंह आप पर आक्रमण करे, किन्तु मानसिंह आना-कानी करते चले आ रहे थे, तब भीतर-ही-भीतर अकबर के ये प्रयत्न हुए कि मानसिंह आपसे मिले और किसी तरह मानसिंह का आपके द्वारा अपमान हो। उसके चतुर भेदियों ने यह काम शुरू कर दिया और मानसिंह आपके दर्शनों की लालसा लिये हुए आपके पास पहुँचा।

प्रताप—उसमें किसी सीमा तक दोनों बातें थीं खाँ साहिब! प्रकट रूप से हम से दोस्ती करना भी और वैसे हमारी शक्ति को परखना भी। (सोचते हैं) मानसिंह वीर है, मुझे उसकी वीरता पर कभी सन्देह नहीं हुआ। किन्तु उसकी वीरता चन्द चाँदी के टुकड़ों और झूठे सम्मान के हित बिक चुकी है, जो अपनी माँ-बहन को गिरवी रखकर अपनी भावनाओं का सौदा करता है क्या वह नीच नहीं है? (रुककर) मैं आप लोगों से एक बात पूछता हूँ कि क्या मानसिंह अपने से कुछ निम्न जाति के किसी राजपूत या और किसी भारतीय नरेश को अपनी बहन दे सकते हैं। उत्तर यही मिलेगा, नहीं। या मानसिंह अकबर के खान-दान की कोई लड़की अपने परिवार में ले सकेंगे? जैसा कि मैंने सुना है कि अकबर यही चाहते हैं कि उनके परि-वार की लड़कियाँ ऊँचे हिन्दू-नरेशों के यहाँ जायँ, है मानसिंह में इतनी क्षमता? किन्तु यहाँ भी वही उत्तर मिलेगा, नहीं। फिर मैं पूछता हूँ क्या यह सब ढोंग नहीं है?

हाकिमखां—आप अपनी जगह पर ठीक थे महाराणा! यह वर्गों के नहीं, जातियों के नहीं, स्वार्थों के युद्ध हैं। अकबर के

आगे हिन्दू और मुसलमान का कोई सवाल नहीं, उसे तो अपने राज्य की सीमाएँ बढ़ाने से मतलब है।

प्रताप—सूर साहिब ! आज मुझे कहने में कोई संकोच नहीं, मेरे कुछेक सरदारों ने हमारे द्वारा मानसिंह के प्रति हुए व्यवहार को राजनीति की एक बहुत बड़ी भूल भी माना, किन्तु मेरे भोले साथी नहीं जानते कि मानसिंह की मित्रता हमें सदा के लिए मिटा देती। वह मेरे सच्चे और ईमानदार साथियों में भेद-नीति और विलासिता के बीज बो देता। मैंने क्रूर होकर उसी समय उस काँटे को निकाल देना उचित समझा। और उसकी बालकों-जैसी प्रतिज्ञा मुझे अब भी याद है (कुछेक क्षण बाद हँसते हैं) वह यह नहीं जानता कि हम अपने सम्मान के हित महाकाल से भी युद्ध करने की क्षमता रखते हैं।

झालामाना—एक-दो दिनों में ही अब उसे इस बात का पता लग जायगा कि उसकी प्रतिज्ञा कितनी थोथी थी। (मूंछों पर हाथ फेरते हुए) वैसे मैंने तो उसे तभी कह दिया था कि जब भी युद्ध के लिए जी मचले चले आना और अपने हिमायतियों को भी ले आना !

हाकिमखाँ—(हँसते हैं) आपने ठीक कहा और अब वह अपने हिमायतियों को लेकर ही तो आया है। (रुककर) तलवारों के साये में मस्ती से झूमना ही अपना काम है महाराणा ! इन बुजदिलों की गीदड़-भभकियों का अपने पर क्या असर होगा ?

मेघाजी—वैसे हाकिमखाँ ! मुगलों को अचम्भा तो होगा जब वे सुनेंगे कि राजपूतों की ओर से पठान भी इस महायुद्ध में लड़ रहे हैं।

हाकिमखाँ—इसमें अचम्भे की कौन सी बात है भीलराज ! हम तो

सदा से ही मुग़लों के खिलाफ़ लड़ते रहे हैं, बादशाह शेरशाह सूरी ज़िन्दगी-भर हुमायूँ से लड़ते रहे हैं। किसी वक्त मुग़ल सल्तनत उनके नाम से काँपती थी।

प्रताप—और यही हाल महाराणा साँगा के समय में मुग़ल सल्तनत का था। इब्राहीम लोदी की सहायता के लिए वे लड़े थे। रणचण्डी का उन्हें आशीर्वाद था, उनकी तलवार स्वयं महाकाल ने बनाई थी।

रामशाह—एक छोटी-सी भूल ने युद्ध का पासा ही पलट दिया, नहीं तो सारे भारत पर मेवाड़ का ध्वज लहराता, क्यों राणा जी !

प्रताप—(सांस भरकर) ईश्वर इन्सान को महान् बनते हुए नहीं देख सकता। मेरे और मेरे बाबा महाबली साँगा के बीच की कड़ी बहुत ही बोदी थी। मुझे कहते और सोचते सदैव लज्जा का अनुभव होता है कि मेरे पिता हमारे वंश की वीरता के लिए कलंक थे। नहीं तो आज हमें यह दिन न देखना पड़ता।

हाकिमखां—(आसमान की ओर इशारा करके) अपनी बातें वही जानें। तकरीबन देखने में आया है कि बहादुर बाप के बेटे बुज़दिल निकलते हैं और कई बार बुज़दिल बाप की औलाद वीरता में शेर को भी मात करती है।

प्रताप—इसमें इन्सान की परिस्थितियां और उसके साथियों पर भी बहुत कुछ निर्भर होता है। साथी चाहें तो शराब के प्याले में डुबा दें और चाहें तो शेर की माँद में रहने की हिम्मत भी बँधा दें। (हँसते हैं) पर मुझे अपने अमर पर विश्वास है कि मेरे और उसके बीच कोई कायरता की प्रतीक कड़ी नहीं पड़ेगी।

मेघाजी—आप ठीक कहते हैं महाराणा ! हमें भी इस बात पर विश्वास है।

प्रताप—वैसे मानव की दुर्वलताओं का कुछ भरोसा नहीं। कई वार एकान्त में वैठा हुआ मैं शक्तिसिंह के विषय में सोचा करता हूँ। उसकी वीरता में मुझे कभी सन्देह नहीं हुआ और न उसकी देश-भक्ति पर ही कभी कोई सन्देह था। वचपन से ही हम दोनों एक दूसरे के प्रिय थे, किन्तु एक छोटी-सी घटना ने उसे देशद्रोही वना दिया। वह उसी अकवर से जा मिला जिसके खून से सदैव वह अपनी तलवार की प्यास बुझाने के लिए आतुर रहता था। साधारण मनुष्य की भावनाओं के लिए कभी भी एक मत निर्धारित नहीं किया जा सकता।

हाकिमखां—सुना है इस होने वाले युद्ध में वह मानसिंह के सलाहकार के रूप में काम कर रहे हैं।

प्रताप—यह तो निश्चित है कि मेरे रक्त से वह अपनी प्यास बुझाना चाहता है। देखते हैं किसकी तलवार की प्यास बुझती है। (क्षणिक अवकाश) वैसे ईश्वरीय बातें ईश्वरीय ही होती हैं। मैं उस दिन वैठा हुआ सोच रहा था कि आपको अपनी सहायता के लिए निमन्त्रित करूँ, पर साथ ही यह भी विचार आया कि कहीं आप हमारा निमंत्रण अस्वीकार न कर दें ? किन्तु हमारा अहोभाग्य। तभी आपके दूत ने आकर आपका पत्र हमें दिया—"कि मैं आपकी ओर से इस महायुद्ध में शामिल होना चाहता हूँ।" इसे ईश्वरीय सहयोग न कहें तो और क्या कहें ?

हाकिमखां—मैं कभी भी सहन नहीं कर सकता महाराणा कि ख़ूनी इन्सान बिना बात ही दूसरों का ख़ून वहाता फिरे। मैंने जव सुना कि मानसिंह शाही फ़ौज के साथ आप से लड़ने

जनता के दुःख-दर्द ईमानदारी से समझ सकते हैं, और उन्हें समझा सकते हैं।

प्रताप—वाह ! धन्य हो ! हम आप से पूर्णरूपेण सहमत हैं।

हाकिमखां—कभी मुझ पर सूफी मत के सन्तों का इतना प्रभाव रहा है कि मैं स्वयं सन्त बनने वाला था किन्तु भाग्य को कुछ और ही स्वीकार था।

अमरसिंह—(आते हुए) महाराणा जी !

प्रताप—कहो, क्या कहना चाहते हो ?

अमरसिंह—सब सेनाओं के सैनिक आप लोगों के दर्शनों को लालायित हैं। मैं चाहता था कि अभी आप उन्हें युद्ध-सम्बन्धी कुछ बातें बतला देते तो ठीक रहता, क्योंकि फिर धूप बहुत तेज हो जायगी और आप लोग भी कुछ आराम कर सकेंगे। आने वाली रात का सफ़र भी सामने है।

प्रताप—विचार तो उत्तम है। कहिए आपकी रसद इत्यादि का प्रबन्ध तो ठीक चल रहा है शाहजी !

भामाशाह—सब तो एकलिंग की कृपा है महाराणा !

प्रताप—अच्छा तो चलो। (हँसते हैं) अमर हमारे पथ-प्रदर्शक बनो।

अमरसिंह—लज्जित क्यों करते हैं पिता ! हमें आपके बतलाये हुए पथ पर चलना है। आप ही हमारे पथ-प्रदर्शक हैं।

प्रताप—हमारे उत्तराधिकारी को यह कार्य अभी से सीख लेने चाहिएँ। हम उसे अवसर दे रहे हैं।

[सब हँसते हुए जाते हैं]

द्वितीय दृश्य

समय—सन्ध्या

स्थान—खमनूर से कुछ दूर ऊपर की पहाड़ियाँ

[रंगमंच पर बहुत थोड़ा परिवर्तन, लगभग उसी तरह की पहाड़ी चट्टानें। महाराणा प्रताप, हाकिमखाँ, और युवराज अमर खड़े बातें कर रहे हैं। पीछे एक विशाल सैनिक-शिविर पड़ा हुआ है नेपथ्य में पहले दृश्य की तरह युद्ध के वाद्य बज रहे हैं। सामूहिक रूप से सैनिक एक गीत गा रहे हैं।]

गीत

हम आतुर हैं रण चण्डी का खप्पर भरने को।
रक्त का सागर तरने को ॥
निकल पड़ी हैं आज म्यान से भैरव तलवारें
गूंज रही हैं दसों दिशाएँ सुनकर हुंकारें
हम निकले हैं बांध कफ़न हँस-हँसकर मरने को।
मृत्यु को प्रिय कह वरने को ॥१॥

× × ×

मधु पीने वाले को गरल पिलाने आये हैं
पुष्प रसिक को तीखे शूल चुभाने आये हैं
हम आये हैं आज शत्रु की मस्ती हरने को।
शक्ति का निर्णय करने को ॥२॥

[धीरे-धीरे गीत समाप्त होता है, किन्तु रण-वाद्य बजते रहते हैं]

प्रताप—(अट्टहास) लेकिन लक्ष्मी इस समय बुरी तरह से रूठी हुई है।

[दोनों हँसते हैं]

प्रताप—मेरा ऐसा भी मत है कि अच्छा विख्यात कवि यदि मनुष्यता के मार्ग से हट जाय तो देवी सरस्वती उसका साथ छोड़ देती है कविता का वरदान नष्ट हो जाता है।

हाकिमखाँ—धन्य हो महाराणा ! धन्य हो ! ठीक फरमाते हैं आप।

[इतने में एक-एक करके भीलराज, रामशाह, झालामान, भामाशाह इत्यादि और दूसरे सरदार भी आते हैं]

प्रताप—आइये बैठिए ! अब हमें शीघ्र ही कुछ महत्त्वपूर्ण बातों पर विचार कर लेना चाहिए !

भामाशाह—अवश्य महाराणा !

प्रताप—हमें आज और अभी सोच लेना चाहिए कि हमें अपनी सेना की व्यूह-रचना किस ढंग से करनी है। हम शत्रु की असंख्य सेना को अपने इन इने-गिने सैनिकों द्वारा चीर देना चाहते हैं। कुछ ज्ञात नहीं कि युद्ध का डंका किस समय बज उठे, हम खमनूर से केवल आठ या दस मील ही तो ऊपर हैं। इन आने वाले दो-तीन दिनों का कोई भी सुप्रभात हमें भगवान् एकलिंग के जयनाद से गुँजा देना है।

रामशाह—ऐसा ही होगा महाराणा !

प्रताप—मेरे विचार में शत्रु के आक्रमण की प्रतीक्षा न करके हमें शत्रु पर आक्रमण कर देना चाहिए। क्योंकि मैं नहीं चाहता कि शत्रु हमारे पहाड़ी पथों से परिचित हो जाय।

रामशाह—तब तो खमनूर इनके लिए उचित स्थान है ?

प्रताप—क्यों ! आप सब लोगों का क्या विचार है ?

सब—हम भी यही चाहते हैं।

भामाशाह—खमनूर है भी हल्दी घाटी के चरणों में ! युद्ध की स्थिति के अनुसार हम इससे लाभ उठा सकते हैं और मुजेरा से बढ़कर खमनूर तक शाही फ़ौजें आ चुकी हैं उन्हें उससे आगे हमें नहीं बढ़ने देना चाहिए।

झालामाना—आप निश्चिन्त रहिए। इससे आगे वह बढ़ेंगी भी नहीं। मानसिंह इतना मूर्ख नहीं है कि वह अपने आपको पहाड़ों में उलझा दे।

प्रताप—और हम भी अब अधिक दिनों तक रुक नहीं सकते। हमें अपनी रसद का भी तो ध्यान रखना है।

भामाशाह—वैसे भी हमारे सैनिक युद्ध के लिए बहुत अधीर हो उठे हैं महाराणाजी, हमें उनके उत्साह को ठंडा नहीं होने देना चाहिए।

प्रताप—तो फिर हमें आज ही यह निश्चित कर लेना चाहिए कि हमारी सेनाओं की क्या स्थिति होगी। वैसे भामाशाह जी, आपको अपने खाद्य-भण्डार की रक्षा करनी है। बल्कि यदि सम्भव हो सके तो शत्रु की खाद्य-सामग्री पर छापा मारकर उसे लूटना है।

भामाशाह—ऐसा ही होगा महाराणा जी !

प्रताप—और भीलराज ! आप शत्रु-पंक्तियों को काटने के लिए अपने प्रबल धनुपधारी सैनिकों को प्रयोग में लायँगे।

मेघाजी—आप चिन्ता न करें महाराणाजी, जो आप चाहेंगे, वही होगा, हमें विश्वास है कि हम अपनी कार्य-कुशलता पर आप से साधुवाद प्राप्त करेंगे। इस समय आपका परिवार तो यहाँ से तीस-चालीस मील दूर घने जंगलों में है और वहाँ पर रक्षा का इतना अच्छा प्रबन्ध है कि शत्रु की छाया तक भी वहाँ नहीं पहुँच सकती।

प्रताप—बहुत सुन्दर ! सुनिए मन्त्री जी ! मेरे विचार में आपको

और अमरसिंह को एक साथ रहना चाहिए, क्योंकि आपके साथ भी कुछेक सुलझे हुए वीर योद्धा चाहिएँ।

भामाशाह—जैसी आपकी आज्ञा !

अमर—लेकिन पिताजी, मैं अग्रणी सेना के साथ रहूँगा। मैं रसद-वसद की रक्षा और लूट-पाट में शामिल नहीं होना चाहता।

प्रताप—(ऊँचे स्वर में) अमरसिंह ! पहले हमारी बातें सुन लो तत्पश्चात् प्रतिवाद करना। वीरता और नीति दोनों के पथ अलग-अलग होते हैं। और हमें दोनों दृष्टिकोणों से आने वाली समस्या पर विचार करना है। या हमारी बातें मान लो या अपनी बातें हम से मनवा लो। हम सर्व-सम्मति से तुम्हें अपना नेता चुन लेते हैं।

अमर—(नम्रता से) भूल हुई पिता जी !

भामाशाह—युवराज स्वाभाविक वीरता के कारण ही बीच में बोल उठे। युवराज मेरे साथ और मैं युवराज के साथ रहूँगा।

प्रताप—यहाँ पर छोड़े हुए अपने सामान को आवश्यकतानुसार यथास्थान पहुँचाना है। अवसर देखकर शत्रु के सहयोगार्थ आती हुई रसद को लूटना है, उसके यहाँ के रसद-विभाग को लूटना है, युद्ध के पश्चात् इस बीहड़ मैदान में उसे भूखों मार देना है ? तुम इस कार्य को छोटा समझते हो युवराज ! मैं यह समझता हूँ कि इस कार्य को कोई कुशल तथा वीर ही कर सकता है। लेकिन महामंत्री और युवराज, लेते हैं इस कार्य का उत्तरदायित्व आप लोग !

अमर—हाँ पिता जी ! हम अपना उत्तरदायित्व अपनी तरह [illegible] निभा कर दिखायेंगे।

प्रताप—(मुस्कराते हैं) हमें तुमसे यही आशा थी। और मित्रो, आज सुबह की सभा में आपको यह पता तो लग ही चुका है कि शत्रु की व्यूह-रचना किस ढंग की है। हमारे गुप्त-चर सतर्कता से अपना काम कर रहे हैं। उन्होंने यह बातें हमें सुबह ही बतला दी थीं।

रामशाह—यह तो ध्रुव सत्य की तरह निश्चित है महाराणा, कि आप सेना के मध्य में रहेंगे, ताकि चारों ओर की देख-भाल कर सकें। सुबह की सभा में हम जो निश्चय नहीं कर सके, वे निश्चय हमें अब करके ही यहाँ से उठना चाहिए।

हाकिमख़ाँ—यदि आप लोग उचित समझें तो सबसे आगे-आगे मैं रहना चाहूँगा। हरावल की कमान मैं अपने हाथ में लेने के लिए प्रस्तुत हूँ।

प्रताप—(सोचते हुए) हुँ! विचार तो उत्तम है? क्यों, आप में से किसी को इस विषय पर कुछ कहना तो नहीं?

भामाशाह—इस विषय पर कहने का प्रश्न ही कब उठता है? सूर साहिब वीर और सुलझे हुए सेनापति हैं। हमें उनके नेतृत्व में लड़ते हुए हर्ष ही होगा।

प्रताप—तो यह बात निश्चित हो गई। ठीक है सर साहिब! बाकी आपके साथ कौन-कौन रहेंगे यह भी कल तक निश्चित कर लिया जायगा। बाकी मैंने अपने विचार से दक्षिण पार्श्व रामशाह को सौंपा है, वे जिसे चाहें अपने साथ रख सकते हैं। उत्तर पार्श्व पर झालामाना, सनोतिया मानसिंह के साथ रहेंगे। पृष्ठ भाग राजा गोपीचन्द के नेतृत्व में रहेगा। छोटे-मोटे संशोधन कल तक हो लेंगे।

रामशाह—महाराणा के अंग-रक्षक के रूप में मेरा प्रसिद्ध हाथी रामप्रसाद रहेगा।

झालाराना—उचित परामर्श है। यह एरावत भी आपके पास खूब है, अकबर वर्षों से इस पर आँख गड़ाए हुए है।

रामशाह—इसके लिए हमें बादशाह से कई युद्ध भी करने पड़े, किन्तु इसे हमने नहीं दिया। हम बरबाद हो गए, कई बार हमें अपने राज्य से भी हाथ धोने पड़े किन्तु इसे नहीं सौंपा।

प्रताप—वीर के लिए आन का प्रश्न सर्वप्रथम है रामशाह जी ! फिर आप-जैसे आदमी अधिक थोड़े ही होते हैं दुनिया में।

[एक गुप्तचर का प्रवेश, दूर से आने के कारण थका हुआ है और सांस फूल रहा है]

दूत—अन्नदाता की जय हो !

प्रताप—आओ वीरसिंह कहो क्या कहना चाहते हो ?

दूत—महाराणा जी ! भगवान् एकलिंग ने हम पर विशेष कृपा की है, शत्रु स्वयं जाल में आ फँसा है।

प्रताप—तुम्हारा तात्पर्य क्या है ?

दूत—कुँवर मानसिंह अपने एक हज़ार सैनिकों के साथ इस साथ वाले जंगल में शिकार खेल रहे हैं। उन्हें सुगमता से घेरा जा सकता है, उनका बच निकलना असम्भव है।

रामशाह—जय महादेव ! वास्तव में महाराणा जी यह सुअवसर हमें हाथ से नहीं जाने देना चाहिए। हल्दीघाटी के युद्ध की आवश्यकता ही न रहे।

मेघाजी—इसमें सोचने-विचारने का समय नहीं है राणा जी ! हमें इस समय शत्रु पर आक्रमण कर ही देना चाहिए। बार-बार ऐसा अवसर भगवान् मनुष्य को नहीं देते। राज-नीति के अनुसार हमें यह अवसर हाथ से नहीं खोना चाहिए। हमारी तलवारें इसी दिन की प्रतीक्षा में थीं।

प्रताप—ठहरो, दो घड़ी सोचने दो !

अमर—आज्ञा दो पिता जी, मैं सैनिकों को तैयार होने के लिए कहूँ।

प्रताप—एक क्षण ठहरो अमर ! क्यों, क्या आप सभी का यह विचार है ?

झालामाना—नहीं महाराणा, मेरा यह विचार नहीं है। मैं राजपूतों के लिए यह बात शोभनीय नहीं समझता। हम वीर हैं, वीरता हमारा धर्म है। हमारा धर्म हमें आज्ञा नहीं देता कि हम निरीह शत्रु पर आक्रमण करें।

रामशाह—शत्रु कभी निरीह नहीं होता झालामाना !

झालामाना—आप ठीक फरमाते हैं महाराज ! किन्तु सिंह कभी सोए हुए हाथी पर आक्रमण नहीं करता। फिर हमें अपने पूर्वजों के धर्म-युद्ध स्मरण करने चाहिएँ। रही शत्रु-रक्त से तलवारों की प्यास बुझाने वाली बात, वह तो एक-दो दिन बाद खुलकर बुझाई ही जायगी ! आखिर हम लोग यहाँ आए किसलिए हैं, तलवारों की प्यास बुझाने ही न ? जहाँ आप लोगों ने इतने सन्तोष का परिचय दिया है वहाँ एक-दो दिन और सही ! महाराणा की अक्षय वीरता पर कलंक का टीका मत लगने दो। आने वाले इतिहास में किसी को यह कहने का अवसर न मिले कि महाराणा प्रताप ने असावधान मानसिंह पर आक्रमण किया था।

अमर—आने वाला इतिहास यह भी तो कह सकता है झालामाना कि महाराणा प्रताप ने शत्रु को मिटा देने का ऐसा अवसर खो दिया था जिसे राजनीति कभी क्षमा नहीं कर सकती !

झालामाना—फिर आप लोग जैसा उचित समझें वैसा कीजिए युवराज ! मेरी आत्मा इसे सहन नहीं कर सकती। मैं

इसमें किसी तरह का भी सहयोग नहीं दे सकता।

[अपनी जगह से उठकर जाने लगते हैं, किन्तु रुककर महाराणा से प्रश्न करते हैं]

आप शान्त क्यों हैं महाराणा! आप क्यों नहीं कुछ कहते?

प्रताप—मैं तो स्वयं आप लोगों के निर्णय की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

हाकिमखां—आप शीघ्र ही अपना निर्णय दीजिए महाराणा! सबकी आँखें आपकी ओर लगी हुई हैं।

प्रताप—महामंत्री जी, वीरसिंह को राज्य-कोष से पर्याप्त मात्रा में पुरस्कार दिया जाय!

भामाशाह—जो आज्ञा अन्नदाता!

प्रताप—वीरो! साथियो! मेरा मत स्वयं अपने आदरणीय वयोवृद्ध सरदार झालामाना के साथ है। वास्तव में वीरता स्वयं एक धर्म है और उसके कुछ विशेष नियम हैं। हम एक वीर के नाते उनका उल्लंघन नहीं कर सकते। (झालामाना से) आइये झालामाना जी! आप अपने आसन पर विराजिए!

झालामाना—(अपने आसन की ओर मुड़ते हुए) धन्य हो महाराणा, धन्य हो! मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि मानसिंह जानता-बूझता भी इस आक्रमण की ओर से निश्चिन्त होगा, क्योंकि वह जानता है मानव प्रताप मानवता और वीरता के नियमों का उल्लंघन नहीं कर सकता।

अमर—(व्यंग्य से) वह सोचे-न-सोचे, हम तो इस बात को अवश्य सोच रहे हैं।

[अट्टहास के साथ प्रस्थान]

प्रताप—हमें अपनी बात पर आ जाना चाहिए। लगभग सभी

बातें हमने निश्चित कर ली हैं, बाकी कल सोच लेंगे और मेरे विचार में परसों सुबह भगवान् सूर्य के दर्शनों के साथ ही शत्रु पर आक्रमण कर देना चाहिए। आगे जैसी भगवान् एकलिंग की इच्छा! महाकाल की जय हो! आओ अब चलें! क्योंकि रात आना चाहती है!

[सब जाते हैं]

तृतीय दृश्य

स्थान—हल्दीघाटी

समय—सन्ध्या निकट ही है।

(नेपथ्य में युद्ध के नगाड़े बज रहे हैं, हाथियों की चिघाड़ें भीषण चीत्कार, घोड़ों के भागने, दौड़ने और हिनहिनाने का स्वर। पहाड़ की एक चोटी पर खड़े हुए भीलराज अपने सैनिकों सहित युद्ध का दृश्य देख रहे हैं, भील सैनिक पर्वतों से तर-ऊपर शत्रु-सेना पर तीरों की वर्षा कर रहे हैं, मुख पर आशा-निराशा की भाव-लहरियां आ-जा रही हैं)

मेघाजी—(एक ओर देखते हुए) आज मेवाड़ के भाग्य का निर्णय है। वाह ! हाकिम सूर वाह ! वास्तव में तुमने ही किसी वीर माँ का दूध पिया है। अपनी सेना के साथ किस महावेग से शत्रु-सेना पर आक्रमण किया, शत्रु-सेना एक क्षण को भी न ठहर सकी। (अपने सैनिकों से) वीरो, तुम वीर हो। वीर कभी रुकने और थकने का नाम नहीं लेता। अन्धाधुन्ध तीरों और पत्थरों की वर्षा करते जाओ। देखो, दूसरी चोटियों से तुम्हारे साथी किस आँधी के वेग से शत्रु-सेना पर प्रहार कर रहे हैं।

सैनिक—चिन्ता न करें स्वामी ! जब तक हममें से एक के भी शरीर में रक्त की बूँद रहेगी, तब तक शत्रु एक इंच भी इस पहाड़ी भूमि पर आगे नहीं बढ़ सकता। वह देखो सरदार, वह क्या। महाराणा शत्रु-सेना को चीरते हुए मानसिंह के हाथी की ओर बढ़े !

मेघाजी—(उल्लास में) वाह-वाह, धन्य है चेतक तू धन्य है, क्या

शेर की तरह दोनों पञ्जे मानसिंह के हाथी पर जमा दिए, यह किया राणा ने भाले से वार !

[ऊँचे स्वर से नारा लगाते हैं 'जय महाकाल'। सभी सैनिक 'जय महाकाल' का नारा लगाते हैं]

हैं यह क्या, ऐसा लगता है जैसे महाराणा मुगल सैनिकों में घिर गए हैं ! मंगलू ! नगाड़े पर चोट दो, बहुत जल्दी, तूफान के वेग से। दूसरी चोटी की सुरक्षित सैनिक टुकड़ी लेकर मैदान में उतरो ! लगता है महाराणा की रक्षा असंभव है। ठहरो, तुम यहाँ रुको, मैं स्वयं जाता हूँ।

मंगलू—आप नहीं, स्वामी आप नहीं ! हमारे चरण इस घाटी के अभ्यस्त हैं। आप यहाँ की देख-भाल करें। मैं प्रबल धनुर्धर सैनिकों को लेकर जाता हूँ।

[प्रस्थान]

मेघाजी—तीर की तरह जाओ मेरे वीर सैनिक ! (फिर युद्ध-क्षेत्र की ओर देखते हैं) यह क्या, वाह लगता है बूढ़े झाला-माना ने महाराणा का राज-मुकुट अपने सिर पर धारण कर लिया। शत्रु उन्हें राणा समझकर उन पर टूट पड़े। भीषण युद्ध हो रहा है (कल्ला का प्रवेश) मैदान से आ रहे हो !

कल्ला—हाँ स्वामी, वहीं से आ रहा हूँ।

मेघाजी—क्यों, क्या हाल है युद्ध का ?

कल्ला—भीषण युद्ध हो रहा है। पहले तो मुगल सेना हमारे प्रबल आक्रमण से घबरा उठी थी, उसमें भगदड़ पड़ गई थी, एक बार तो ऐसा लगा जैसे हम जीत गए, शत्रु भाग निकले !

मेघाजी—कहते चलो, रुको मत !

कल्ला—तभी अचानक शत्रु पक्ष के किसी चतुर सेनापति ने यह

अफवाह उड़ा दी कि बादशाह अकबर खुद नई कुमुक लेकर युद्ध में आ गए हैं। भागती हुई मुगल फौज के पाँव फिर से जम गए। दोनों ओर भीषण मार-काट हो रही है। हमारे पठान नेता की मार शत्रु-सेना नहीं सह पाई, वैसे एक दुःखद घटना घट चुकी है। शत्रुओं का भारी विनाश करके ग्वालियर-नरेश रामशाह और उनके तीनों महावीर पुत्र युद्ध-क्षेत्र में मारे जा चुके हैं! महाराणा साक्षात् रुद्र की तरह युद्ध कर रहे हैं। उनके भालों की चोट अच्छे-अच्छे सेनापति भी नहीं सह पा रहे!

मेघाजी—जाओ, जाकर दीवानजी की रक्षा करो। यहाँ से भी वैसे युद्ध का मध्य भाग हम बड़ी अच्छी तरह से देख सकते हैं, अब तुम अपना काम करो। (फत्ता जाने लगता है) जैसे भी हो जल्दी-जल्दी युद्ध-क्षेत्र का समाचार देते रहो!

फत्ता—जो आज्ञा! ऐसा ही होगा!

मेघाजी—कमबख्त आँख चूक गई! चेतक किधर गया, किधर गए महाराणा! (कुछ देर देखने के उपरान्त) वो रहे! यह क्या, चेतक काबू से बाहर हो रहा है, महाराणा के रोके नहीं रुक रहा। सैनिको, युद्ध बन्द कर दो, नीचे पहाड़ी पथों पर चलकर युद्ध करो। चेतक महाराणा को युद्ध-क्षेत्र से ले भागा, वह देखो, वह उस ओर महाराणा उस पगडंडी पर चल दिए। हमें शीघ्र ही उनकी रक्षा का प्रबन्ध करना चाहिए। सम्भवतः शत्रु-सैनिक उन्हें पहचान नहीं पा रहे, और यह क्या, उसी पगडण्डी पर दो मुगल सरदार भी गए, जल्दी-से-जल्दी नीचे चलकर अपने पहाड़ी पथों की रक्षा करो। मैं चल रहा हूँ। शायद हमें अभी शत्रु से आमने-सामने लड़ाई लड़नी पड़े!

एक भील सैनिक—इन दो को महाराणा का एक वार ही काफी है। ऐसी घबराने की कोई बात नहीं है स्वामी!

मेघाजी—मैं घबरा नहीं रहा। मुझे भगवान् एकलिंग पर पूर्ण विश्वास है। पर हृदय तो हृदय ही है, भविष्य का कुछ पता नहीं।

सैनिक—स्वामी, उसी पथ पर एक राजपूत सैनिक भी अपना घोड़ा लेकर गया है। अब यह नहीं पता कि वह किस पक्ष का है?

मेघाजी—आज तो फिर युद्ध का निर्णय होता नहीं दीख रहा। चलो, तीरों की वर्षा करते हुए चलो। रात आने ही वाली है। अपनी मशालें तैयार रखो। कह नहीं सकते कि यह आने वाली रात कितनी भयानक सिद्ध हो?

[एक एक करके सब चले जाते हैं]

चतुर्थ दृश्य

स्थान—एक पहाड़ी पगडण्डी

(रंगमंच सूना है, इतने में नेपथ्य में एक आवाज गूंजती है—'ओ नीला घोड़ा रा सवार···ओ नीला घोड़ा रा सवार···' अस्त-व्यस्त वेश में महाराणा प्रताप का रंगमंच पर प्रवेश)

प्रताप—(जिस ओर से आते है उधर देखते हुए) मैं अभी आया, एक क्षण में आया मित्र ! इस ऊँचे पहाड़ी टीले से देखूँ कि यह आवाज किधर से आ रही है ! मेरे प्राणों से प्रिय ! मेरे जीवन के साथी ! मैं आया, बस एक क्षण की क्षमा। उनसे दो-दो हाथ कर लूँ, दो-चार बातें कर लूँ ! वह यह न समझें कि प्रताप कायर निकला। तुम आज दिन भर के परिश्रम से थक गए हो, अभी कुछ क्षण आराम करो। मैं अभी आया (नेपथ्य से फिर आवाज गूंजती है '···ओ नीला घोड़ा रा सवार') यह मुझे मेरे प्रिय सम्बोधन के साथ कौन बुला रहा है ? आवाज पहचानी-सी लगती है। (दूसरी ओर ध्यान से देखते है) हैं, कौन ! शक्तिसिंह ! (विकृत हंसी) अच्छा अवसर देखा तुमने अपना प्रतिशोध चुकाने का। अच्छा फिर आओ, आज तुमसे अपना सब हिसाब चुकता कर लूँ। (म्यान में से तलवार खींचते है) आओ, शक्तिसिंह आओ, देशद्रोही कुलांगार आओ ! लो बुझा लो अपनी तलवार की प्यास, अनेकों वर्षों से प्यासी है। मैं अपना सीना खोले प्रस्तुत हूँ। इच्छा तो होती है कि तुम-जैसे देशद्रोही के सीने में अपनी तलवार घुसेड़ दूँ ! पर नहीं, तुम मेरे छोटे भाई हो, तुम पर पहला वार नहीं

करूँगा ! जल्दी करो अपना प्रहार, मेरा वक्षस्थल खुला है !

शक्तिसिंह—(शक्तिसिंह महाराणा के चरणों में अपनी तलवार फेंककर) मुझ देशद्रोही, कुलांगार शक्तिसिंह पर अपना प्रहार करो महाराणा ! आपके हाथों ही मेरी इस पतित आत्मा का उद्धार होगा ! भैया, इस अभागे शक्तिसिंह की आपसे यही विनती है। (चरणों पर झुकता है)

प्रताप—(भावों में परिवर्तन आता है) उठो, शक्ति उठो ! सुबह का भूला हुआ यदि शाम को लौट आये तो उसे भूला हुआ नहीं कहते। आओ भैया आओ, मेरे हृदय की उद्विग्नताओं को शान्त करो। मेरे वक्षस्थल से लग जाओ। (उठाकर वक्षस्थल से लगाते हैं। दोनों का स्वर भरा हुआ है) पथ-भ्रष्ट कौन नहीं होता अपने जीवन में ! (सोचते हुए) पर यह तो कहो शक्ति कि तुम इधर आ कैसे निकले ?

शक्तिसिंह—आ कैसे निकला ! आपका स्नेह ! आज आपके द्वारा प्रदर्शित आपके वीरत्व की शक्ति इस पथ-भ्रष्ट शक्ति को अपने साथ ही ले आई भैया ! महाराणा, मैंने अनेकों युद्ध देखे, लेकिन इतना प्रबल युद्ध आज जीवन में पहली बार ही देखा ! लगता था जैसे साक्षात् भगवान् शंकर अपना त्रिशूल लेकर शत्रु-सेना का संहार कर रहे हैं। सचमुच भैया ! आपका रण-कौशल देखते ही बनता था, उसका वर्णन नहीं हो सकता।

प्रताप—इस युद्ध में बहुत-कुछ खोया है शक्ति ! (सांस भरकर) इस युद्ध में बहुत-कुछ खोया ! कहीं बैठकर इसका उचित अनुमान लगा सकूँगा कि कितना कुछ इस महायुद्ध में होम किया। (स्मरण करते हुए) पर हाँ देखो, मेरा पीछा करने वाले तो गिनती में अधिक थे। तुम अकेले तो न

थे ! उनका क्या हुआ ?

शक्तिसिंह—वे मारे गए भैया ! मैंने उन्हें हमेशा के लिए गाढ़ी नींद में सुला दिया। जैसे ही चेतक आपको लेकर युद्ध-क्षेत्र से मुड़ा तो उनकी नजर आप पर पड़ी। वे महाराणा को पहचान गए और उन्होंने पीछा किया। मैं यह सब कुछ देख रहा था सो उनके पीछे हो लिया। जानता था कि आप इन दोनों के लिए अकेले ही पर्याप्त हैं फिर भी यह अवसर मैं अपने हाथ से खोना नहीं चाहता था ! सोचा, सम्भवतः मेरे मस्तक पर पड़ी कलंक की रेखाओं में से दो-चार ही मिट जायँ। (फिर चरण छूता है) भाई की ममता मुझे अपने-आप ही इधर खींचकर ले आई।

प्रताप—शक्ति ! मेरे प्रिय ! मेरे बचपन के मित्र ! इस तरह उन्माद की बातें मत कर। भाई भाई ही होता है, जीवन में इससे अधिक मादक, मधुर सम्बोधन कहाँ मिलेगा ! तुमने आकर अच्छा ही किया। हमारा यह मिलन इतिहास में चिर-स्मरणीय रहेगा !

शक्तिसिंह—लोग कहेंगे कि आज के दिन एक पथ-भूला पथिक अपने घर लौट आया था ! हाँ तो मैं क्या कह रहा था, मैंने अपना घोड़ा उनके पीछे डाल दिया। चेतक बलीचा नाले को एक ही छलाँग में पार कर गया। चेतक चेतक ही है भैया !

प्रताप—आज मानसिंह के हाथी की सूँड में पकड़ी हुई तलवार से चेतक का पाँव चोट खा गया। पर चेतक वास्तव में ही चेतक है उसने उस दशा में भी मुझे यहाँ तक पहुँचा दिया (जिधर चेतक है उधर देखते हैं) मैं अभी आया चेतक ! आओ शक्ति, हम यहीं बैठकर बातें करें।

शक्तिसिंह—नहीं भैया ! हम दो-चार क्षण से अधिक यहाँ नहीं

ठहरेंगे। इस स्थान से हम आने-जाने वाले सबको देख सकते हैं और यहाँ से उतरते ही हम पहाड़ी की ओट में हो जायँगे!

प्रताप—अच्छा, जैसी तुम्हारी इच्छा!

शक्तिसिंह—रास्ते में ही साधारण युद्ध के पश्चात् मैंने उन दोनों का वध कर दिया!

प्रताप—तुम वीर हो! महाबली साँगा के पौत्र हो······

शक्तिसिंह—(बात काटकर) यशस्वी प्रताप के भाई हो, यह भी तो कहो भैया!

प्रताप—मैं यही तो कहने जा रहा था कि तुम प्रताप के भाई हो। तुमने विपदावस्था में हमारी रक्षा की है। (रुककर) आज से तुम्हारे वंशज शक्तावत कहलायँगे और मेरे आने वाले वशंज स व उनका सत्कार करेंगे!

शक्तिसिंह—यह मेरा सौभाग्य है कि आपने मुझ-जैसे अधम प्राणी का भी इतना सत्कार किया। एक बात पूछूँ महाराणा! और एक बात के लिए श्री-चरणों में निवेदन भी करूँ!

प्रताप—कहो, क्या कहना चाहते हो? महाराणा नहीं भैया कहो! बोलो शक्ता, बोलो चुप क्यों हो?

शक्तिसिंह—भै ा! क्या मैं समझूँ कि मुझ पर से वह राजाज्ञा उठा लो। गई जिसके द्वारा मुझे देश से निर्वासित कर दिया गया था। क्या मैं अपने प्यारे मेवाड़ में फिर आ सकता हूँ!

प्रताप—मेवाड़ तुम्हारा है और तुम्हारा ही रहेगा। वह एक सामयिक राजाज्ञा थी जो कि पुरोहित की हत्या वाली घटना से विवश होकर मुझे देनी पड़ी! सब सरदार तुम्हारे प्रति विद्रोह कर उठे थे। मैं स्वयं उन्मत्त हो उठा था। तुम्हारी प्राण-रक्षा का वह सरल उपाय था। आज

तुम उस आज्ञा से उन्मुक्त हो। वह घटना .....

शक्तिसिंह—(बात काटकर) बस भैया बस! इससे आगे नहीं। मैं उस घटना को भुला देना चाहता हूँ। वह मेरे जीवन-ग्रन्थ का एक कलुषित अध्याय है!

प्रताप—आओ! अब हम दोनों यहाँ से चलें। आओ, मेरे साथ ही चलो सब लोग हम दोनों को इकट्ठा देखकर आश्चर्य-चकित हो जायँगे!

शक्तिसिंह—मैं अभी आपके साथ नहीं जाऊँगा भैया, किन्तु शीघ्र ही सेवा में उपस्थित हूँगा। मैं इस समय मुगल छावनी को ही लौटूँगा।

प्रताप—शक्ता, तुम कहीं उन्मादी तो नहीं हो गए। वहाँ जाना तुम्हारे लिए अहितकर होगा, वे लोग सब कहानी समझ जायँगे और तुम्हें बन्दी बना लेंगे।

शक्तिसिंह—मुझे बन्दी बनाना बहुत कठिन है मैं विद्युत् की तरह गतिशील हूँ। अच्छा विदा! शीघ्र ही आपसे मिलूँगा। जैसे भी बन पड़े मैं अपने सैनिकों को सूचित करता हूँ कि हमें शाही सेना शीघ्र ही छोड़ देनी है। (हँसता है) कहीं मुझे वहाँ न पाकर वे लोग यही न समझें कि मैं इस हल्दीघाटी में मारा गया हूँ।

प्रताप—आज के इस रक्तिम दिन की सन्ध्या भी कितनी विचित्र है। एक प्रति क्षण का साथी सदैव के लिए बिछुड़ रहा है और एक जीवन का रूठा हुआ साथी आ मिला है। (गला रुँधा हुआ है) चेतक अपने जीवन की अन्तिम साँसों पर है, मुझे वह सदैव प्राणों से भी प्रिय रहा है, उसका वियोग मेरे लिए असह्य है। (उसकी ओर देखते हुए) देखो, देखो, शक्ति! वह कितनी ममता-भरी आँखों से मेरी ओर देख रहा है। (दोनों नेपथ्य में चले जाते हैं,

स्टेज पर क्षणिक अन्धकार, महाराणा का ऊँचा रुदन-भरा बोलने का स्वर) चेतक, चेतक ! मेरे साथी, मेरे प्राण ! तुम सदा के लिए मुझे छोड़कर चल दिए ।

['चेतक-चेतक' की ध्वनि धीमी होती है शक्तिसिंह रंगमंच पर आता है]

शक्तिसिंह—(गला रुँधा हुआ) अब वह कारुणिक दृश्य देखा नहीं जाता ! राणा जी ! दीवान जी ! समय न खोइये, नहीं तो चेतक का बलिदान व्यर्थ हो जायगा, इसे व्यर्थ न होने दीजिए महाराणा ! आप यहाँ से शीघ्र ही जाइए ! शत्रु निकट ही है । झालामाना की मृत्यु वाली अपनी भूल को समझता हुआ वह आपको खोजने अवश्य निकलेगा। मेरा घोड़ा इधर है उसे ले लीजिए। मैं उन मुगलों के घोड़ों में से किसी को ले लूँगा ! अच्छा विदा महाराणा, आपको भगवान् एकलिंग की सौगन्ध है यहाँ से शीघ्र ही चले जाइए !

[शक्तिसिंह जाता है]

पञ्चम दृश्य

स्थान—पहाड़ियों के बीच भीलों के एक गाँव के निकट राणा-शिविर।

(महाराणा प्रताप, युवराज अमर, भामाशाह, भीलराज इत्यादि उपस्थित हैं)

प्रताप—घायलों की सेवा-सुश्रूषा तो ठीक हो रही है शाह जी !

भामाशाह—आपसे क्या छिपा है अन्नदाता ! आप स्वयं तो उन्हें देखने जाते हैं। आपका स्नेह, प्यार अनेकों औषधियों से अधिक उनके उपचार के लिए उपयोगी हो रहा है !

मेघाजी—फिर महाराणा ! आपके सैनिक वेतन-भोगी नहीं हैं। वह वीर और देश-प्रेमी हैं। वे आपके और देश के सम्मान के लिए जीवन और मृत्यु का खेल खेल रहे हैं।

प्रताप—समझता हूँ भीलराज ! इस बात को भली भाँति समझता हूँ। इसी विश्वास के ऊपर तो इतने प्रबल मुगल साम्राज्य से लोहा ले रहा हूँ !

अमर—हमारे सभी सैनिक यहाँ आ चुके हैं और बाकी भी इधर आने के प्रयास में हैं। विश्वास है कुछ दिनों में सभी यहाँ एकत्र हो जायँगे !

भामाशाह—दीपक की लौ जहाँ भी होगी, पतंगे उसे ढूँढ़ ही लेंगे !

अमर—शत्रु स्वयं भी बहुत बेचैन है उसे इस युद्ध में अपार हानि उठानी पड़ी है !

प्रताप—(सांस भरकर) हमने भी इस युद्ध में अपने बहुत से रत्न खोए हैं अमर ! यह कमी हम जीवन-भर पूरी नहीं कर पायँगे ! आज की यह सभा कितनी सूनी लग रही है !

(उच्छ्वास) वीरवर झालामाना, उनका बलिदान, क्या कोई भूल सकता है !

मेघाजी—इतिहास साक्षी है महाराणा, उस अमर बलिदान को कोई भी नहीं भूल सकता !

प्रताप—कुछ क्षण को उन्होंने सिसौदियों का राज-मुकुट धारण किया, मुझे युद्ध-क्षेत्र से निकलने का अवसर दिया। मृत्यु के क्षणों में वे महाराणा बने, कहना चाहिए अमर कि उन्होंने हँसते-हँसते मृत्यु का आलिंगन किया। (भावावेश में) झालामाना की जय ! रामशाह जी को भूला जा सकता है। उन्होंने अपने तीनों पुत्रों सहित वीर गति पाई !

मेघाजी—युद्ध में तो यह सब होता ही है महाराज !

प्रताप—मैं कब कहता हूँ कि युद्ध में यह सब-कुछ नहीं होता। क्या तुम यह कहना चाहते हो कि मेरा इन सब पर सोचना व्यर्थ है। यह कभी मत भूलो भीलराज कि हम मानव हैं ? हम में और इतर प्राणियों में यही अन्तर है कि हम में अनुभूति की मात्रा अधिक है। हम अपने अतीत, वर्तमान और भविष्य पर सोचना छोड़ नहीं सकते। हम अपने जीवन की बीती हुई घटनाओं के आधार पर हँस और रो सकते हैं।

मेघाजी—अपराध क्षमा हो महाराज ! मेरी बात से आपको दुःख पहुँचा !

प्रताप—नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है भीलराज ! जीवन में यह सब-कुछ तो होता ही रहता है। पर यह सच है कि जीवन में मनचाहे साथी बहुत कम मिलते हैं। उन्हें प्राप्त करने की चाह मनुष्य में सदैव बनी रहती है। अब आप ही बतलाइये आप में से हाकिमखां सूर को कोई भूल सकता

है। कितना निश्छल व्यक्ति, कितना वीर, कैसा तेजस्वी ! मुझ से कितने ही लोगों ने अलग में कहा कि आप एक विधर्मी को हरावल का सेनापति नियुक्त कर रहे हैं, आप बहुत बड़ी भूल कर रहे हैं ? किन्तु मुझे विश्वास था और इस बात पर गर्व है कि मेरा चुनाव उचित था, उसने मेरे विश्वास को पूरा कर दिखाया ! उसी की शक्ति थी कि आफ़त में फँसे सुन, मुगलों की सशक्त सेना को चीरता हुआ वह हम से फिर आ मिला। हमें इस युद्ध में जीतने की आशा हो गई थी, पर परिणाम वही हुआ जो हम सबके सामने है।

मेघाजी—हार-जीत का निर्णय ही नहीं हो सका।

अमर—वास्तव में एक बार तो ऐसे लगा जैसे हम इस युद्ध को जीत चुके।

प्रताप—(दोनों की बात को अनसुनी करते हुए) वैसे जहाँ तक धोखा मिलने का प्रश्न है वह किसी राजपूत से भी मिल सकता था। क्या राजपूतों ने हमें धोखा नहीं दिया। मेरा अपना भाई जगमल अकबर के दरबार में है। वह रह-रहकर उसे उकसाता रहता है। कुछ दिन पहले शक्तिसिंह वहीं था। आप लोगों से क्या छिपा है ?

मेघाजी—हाकिमखाँ सूर का कुछ पता नहीं लग सका कि उनका क्या हुआ ?

प्रताप—होना क्या था। मुझे विश्वास है कि उनकी युद्ध-क्षेत्र में मृत्यु हुई। नहीं तो वह अब तक यहाँ अवश्य पहुँच चुके होते। हमारे गुप्तचर कोई-न-कोई सूचना उन्हें या हमें देते ही।

भामाशाह—यदि वे शत्रु के बन्दी हो गए हों तब !

प्रताप—यह बात शत-प्रतिशत असम्भव है शाह जी ! मैं उनके

स्वभाव से भली भाँति परिचित हूँ। वे किसी भी मूल्य पर शत्रु का बन्दी बनना स्वीकार नहीं कर सकते। चाहे उन्हें आत्म-हत्या ही क्यों न करनी पड़ी हो।

मेघाजी—यह आप उचित कहते हैं महाराणा ! वे अवश्य ही इस युद्ध-क्षेत्र में मारे गए।

अमर—निस्सन्देह ! नहीं तो वे अवश्य ही हमें ढूँढ़ते हुए आते।

प्रताप—बस, इस युद्ध से हमें एक ही लाभ हुआ। अमर और महामंत्री शत्रु की रसद लूटने में सफल रहे। शत्रु अनाज के अभाव में अकुला उठा है !

भामाशाह—(एक सूचना-पत्र खोलते हैं) आपकी यह आज्ञा सारे देश में सुनवा दी गई है !

प्रताप—हमें भी पढ़कर सुना दीजिए !

भामाशाह—(सूचना-पत्र पढ़ते हैं) जहाँ-जहाँ भी आवश्यकता पड़े। शत्रु को आता देखो, अपना अन्न सुरक्षित स्थान पर न पहुँचा सको तो उसे नष्ट कर दो ! अपनी खड़ी फसलें जला दो! शत्रु को किसी प्रकार का भी सहयोग देने वाला व्यक्ति देश-द्रोही समझा जायगा ? और राज्य में जो देश-द्रोही को दण्ड दिया जाता है वही उसे मिलेगा।

प्रताप—ठीक है ! (सोचते हुए) हूँ, तो शत्रु आजकल गोगुन्दा में है। चालीस राजपूत योद्धा श्रीचन्द्र के नेतृत्व में विशाल शत्रु-सेना से युद्ध करते हुए मारे गए। वैसे शाह जी, इस बात का कुछ पता लगा कि मानसिंह अब चाहता क्या है ?

भामाशाह—वे लोग गोगुन्दा में पड़े हुए आने वाली रसद की प्रतीक्षा कर रहे हैं। वैसे उन्हें हमारे आक्रमण का भी हर समय भय लगा रहता है। खन्दकें बनाकर शाही सेनापति आराम फरमा रहा है ? अफवाह है कि सम्राट् उसके इस युद्ध से खुश नहीं है।

मेघाजी—मुगल सेनापतियों ने बादशाह को उल्टा-सीधा भर दिया होगा। शाहबाजखाँ के आने की अफवाह है।

प्रताप—कोई भी आये। उसे हमारा प्रहार सहन करना ही होगा। खड्ग शत्रु-रक्त से अपनी प्यास बुझायेगी ही।

मेघाजी—दीवान जी, मैं बहुत देर से एक प्रार्थना करना चाह रहा था!

प्रताप—आदेश दो भीलराज!

मेघाजी—महाराणा, हमारे यहाँ आज एक उत्सव है। हम अपने जीवन के युद्ध-काल में भी अपने उत्सवों का मनाना नहीं भूलते!

प्रताप—कोई भी वीर-जाति नहीं भूलती भीलराज! वास्तव में जीने का अधिकारी वही है जो प्रबल-से-प्रबल संघर्षों में भी मुस्कराता रहे। पावस ऋतु आने वाली है क्या उसके स्वागतार्थ कुछ हो रहा है!

मेघाजी—जी, राणा जी! हम तो विश्व के प्रारम्भिक विकास से ही प्रकृति के पुत्र हैं। उसी की गोद में जन्मे, पले और मृत्यु को प्राप्त करना है। यही झोंपड़ियाँ हमारे राजमहल हैं। यह पर्वतों की कन्दराएँ ही हमारी राज-सभाएँ हैं।

प्रताप—यह आपका सौभाग्य है भीलराज कि आप वास्तविकता के बहुत अधिक निकट हैं। कहिए अब आपका कार्यक्रम क्या है?

मेघाजी—यहाँ के भीलकुमार और कुमारियों ने आप लोगों के मनोरंजनार्थ नृत्य और संगीत का आयोजन किया है।

प्रताप—हमारा अहोभाग्य! यहाँ बैठे हुए ही देखने और सुनने को मिलेगा या उठकर कहीं चलना होगा।

मेघाजी—यहीं महाराणा! इसी जगह पर। यह जगह इसीलिए चुनी गई है। आज्ञा हो तो उन्हें आदेश दूँ!

प्रताप—अवश्य, अवश्य। (भीलराज जाते हैं)

भामाशाह—ये लोग निर्धन हैं महाराणा ! लेकिन जीवन का रस इनमें हम से कहीं अधिक है !

प्रताप—इसलिए कि हम लोग जीवन के प्रत्येक पक्ष में वास्तविकता से दूर हटकर सोचते हैं ! हमने स्वयं अपने हाथों अपने लिए अनेकों बन्धनों का निर्माण किया है और हम लोग उसमें बुरी तरह से जकड़े हुए हैं !

[नृत्य के लिए प्रस्तुत वेश-भूषा में भील कुमार और कुमारियों का प्रवेश, साथ में दूसरे जनता के भील भी हैं। सब महाराणा को अभिवादन करते हैं तत्पश्चात् नृत्य प्रारम्भ होता है फिर वे लोग एक गीत गाते हैं।]

गीत

दिग्दिगंत में गूंज रहा मेघों का स्वर।
बरसेगा अब सोना सूखी धरती पर॥

× × ×

प्रकृति दे रही है हमको उल्लास नया,
जीवन की लतिका पर छाया हास नया,
गीतों की रानी वर्षा ऋतु आई है,
विकस रहे हैं खोये भावों के अंकुर।
दिग्दिगंत में गूंज रहा मेघों का स्वर॥१॥

× × ×

आओ हम सब मस्ती से नाचें गायें,
जीवन में कुछ नई उमंगें भर पायें,
दीप जला करके इन काली रातों में—
भर देंगे हर पूनम-सा आलोक मधुर।
बरसेगा तब सोना सूखी धरती पर॥२॥

[नृत्य-गीत की समाप्ति पर आने वाले सब लोग रंगमंच से उतर जाते हैं]

प्रताप—बहुत सुन्दर, बहुत ही सुन्दर ! वास्तव में आप प्रशंसा के पात्र हैं। आपने हमारे विषादयुक्त हृदय को कला की मादकता से उल्लासमय कर दिया। आप हमारी कृतज्ञता स्वीकार कीजिए भीलराज !

मेघा जी—हम लोगों पर सदैव आपकी कृपा रही है महाराणा !

प्रताप—(मुस्कराकर) और हम पर आपकी ! एक दूसरे के सहयोग से ही जीवन की सरिता अपना वास्तविक प्रवाह धारण करती है।

मेघाजी—आज्ञा हो तो मैं कुछ देर के लिए अवकाश चाहूँगा।

प्रताप—अवश्य, अवश्य ! आइये शाह जी, हम भी चलें। घायल सैनिकों से कुछ देर बातें करें।

[भीलराज का प्रस्थान]

भामाशाह—दीवान जी ! यदि भीलराज से कहकर पीड़ित सैनिकों के शिविर में इस प्रकार का एक कलात्मक आयोजन हो जाय, तो कैसा हो।

प्रताप—सुन्दर, बहुत सुन्दर ! कला ही में इतनी क्षमता है कि पीड़ित हृदय को सान्त्वना दे सके ! उचित परामर्श है। उनसे बात करेंगे। आओ अब चलें !

[सब जाते हैं]

षष्ठ दृश्य

स्थान—वही इससे पहले दृश्य वाला।

(प्रताप और रानी प्रभामयी बातें करते हुए आते हैं)

प्रताप—युद्ध, निरन्तर युद्ध ! इन संघर्षों का कहीं कोई अन्त ही नहीं दीखता। दो क्षण भी आराम नहीं। अकबर और प्रताप का संघर्ष है ! (हँसकर) कुछ भी हो पर है यह भी जीवन आनन्ददायक।

प्रभामयी—हम तो इन छप्पन के जंगलों में बैठे-बैठे ही आपकी यशस्विनी गाथा भील-कुमारों के मुख से कभी-कभी सुन लेते हैं ! सुना है कुम्भलगढ़ में आप घिर गए थे।

प्रताप—शाहवाज़खाँ का विश्वास था कि हम बन्दी हो जायँगे। अपनी ही तोप फटने से किले की दीवार उड़ गई, विवश होकर हमें गढ़ छोड़ना पड़ा ? शत्रु समझता रहा कि हम घिर गए हैं ! किन्तु हम सब सकुशल निकल आए। (रुककर) मानसिंह के बाद अब शाहवाज़खाँ आया है। अकबर की आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए। (अट्टहास) मेरे कारण इन शत्रु-सेनापतियों की बड़ी दुर्दशा हो रही है। अकबर को किसी पर भी यकीन नहीं है। भला पूछो, इसमें इन बेचारों का क्या दोष ! उन्हें सफलता न मिले तो क्या वे पहाड़ों से टकराकर अपना सिर फोड़ लें ? (अट्टहास)

प्रभामयी—आपके साथ और कोई नहीं आया क्या ? आपके साथी कहाँ हैं ?

प्रताप—सम्पूर्ण मेवाड़ पर युद्ध के बादल मँडरा रहे हैं। हमें हर

ओर का ध्यान रखना है। भामाशाह जी और ताराचन्द जी को मालवा भेजा है। कुछ मित्र राजाओं से सहयोग लेने के लिए और कुछ विद्रोहियों को दबाने के लिए। इधर डूँगरपुर के राव लूनकर्ण ने और बाँसवाड़े के राजा ने हमारी संधि ठुकराकर अकबर की आधीनता स्वीकार कर ली है।

प्रभामयी—उनके विरुद्ध किसे भेजा गया है?

प्रताप—रावत भाना को, और जोधपुर के चन्द्रसेन भी भाना को सहयोग देने के लिए चल दिए हैं! मुझे भी यहाँ की सेना और कुछ नई भील-सेना इकट्ठी करके शाहबाज़खाँ के शिविर पर आक्रमण करना है? यह भीलराज और अमर किधर गए हैं।

प्रभामयी—चार दिन हुए किसी गुप्तचर ने सन्देश दिया था कि आपकी आज्ञा के विरुद्ध किसी जमींदार ने शत्रु-सेनापति की इच्छा पर अपनी वाड़ी में सब्जी बोई है। उसे दंड देने गए हैं। कार्य कठिन है।

प्रताप—क्यों इसमें कठिनता की क्या बात है?

प्रभामयी—शत्रु-शिविर के पास ही वह जगह है।

प्रताप—फिर क्या हुआ? वीरों के लिए कोई कार्य कठिन नहीं होता! अरे हाँ सुनो, तुम से एक बात पूछनी थी।

प्रभामयी—क्या?

प्रताप—तुम्हारे अमर का विवाह कर दूं।

प्रभामयी—अभी उसकी उमर ही क्या है!

प्रताप—जब हमारा विवाह हुआ था तो हमारी भी उमर क्या थी? हमारे एक मित्र का आग्रह है। फिर विवाह में एक-दो वर्ष तो लग ही जायँगे?

प्रभामयी—जैसी आपकी इच्छा!

प्रताप—फिर तुम्हारी गिनती भी बड़ी-बूढ़ियों में हो जायगी। (हँसते हैं)

प्रभामयी—(हँसते हुए) और आपकी !

प्रताप—हमारी भी समझ लो ! हुँ ! तो हम उन्हें कह दें कि हमें स्वीकार है।

[तभी नेपथ्य में घोड़े की टापों की आवाज और भील-राज एक व्यक्ति को वन्दी बनाकर लाते हैं]

मेघाजी—अन्नदाता ! यह एक ऐसा अपराधी है जिसने आपकी आज्ञा के विरुद्ध कार्य किया। शत्रुओं के कहने पर बाड़ी बोई।

प्रताप—पर भीलराज, इसे यहाँ वन्दी करके लाने की क्या आवश्यकता थी। इसका सिर वहीं धड़ से अलग कर देते जिससे कि आस-पास के दूसरों को पाठ मिलता ? ले जाओ इसे मेरे सामने से। मैं ऐसे अधम व्यक्तियों का मुख भी देखना नहीं चाहता, जिन्हें देश की आन से बढ़कर अपने प्राण प्यारे हैं।

[भीलराज उसे ले जाते हैं तभी गुप्तचर वीरसिंह का प्रवेश]

वीरसिंह—(घबराया हुआ) अन्नदाता ! लुके-छिपे अलग-अलग टुकड़ियों में शत्रु इधर बढ़ा चला आ रहा है। आशा है ! आधी रात को हमें घेर लिया जायगा।

प्रताप—हुँ ! ठीक ! [तलवार की मूठ पर हाथ रखते हैं] अमर, शीघ्र ही रणभेरी बजा दो, नगाड़े पर चोट पड़ने दो।

अमर—जो आज्ञा [प्रस्थान]

प्रताप—प्रभामयी, शीघ्र जाकर बच्चों को खिला-पिलाकर तैयार करो।

(महारानी जाती है)

प्रताप—(गुप्तचर से) तुम्हें यह सब कैसे मालूम हुआ वीरसिंह ?

वीरसिंह—मैं तो हल्दी घाटी के युद्ध से ही उनके साथ हूँ। कछ-वाहा सैनिक बना घूम रहा हूँ।

प्रताप—बहुत सुन्दर, साहसी प्राणी हो!

वीरसिंह—सब आपकी कृपा है स्वामी!

प्रताप—तुम्हें पारितोषिक देने को जी कर रहा है मित्र! किन्तु विवश······

वीरसिंह—स्वामी की अनुकम्पा बनी रहे। सुअवसर आने पर स्वयं माँग लूँगा। मेरा भी अपनी मातृभूमि के प्रति कुछ कर्त्तव्य है। अच्छा स्वामी, मैं चलूँ! मुझे उन्होंने आगे का रास्ता देखने के लिए भेजा है। उन्हें सन्देह न हो जाय। आशीर्वाद दें।

प्रताप—भगवान् एकलिंग की कृपा बनी रहे; जाओ यशस्वी बनो!

[वीरसिंह का प्रस्थान]

[नेपथ्य में नगाड़े पर चोट, रणभेरी की आवाज, युद्ध-गान, प्रताप जाते हैं]

सप्तम दृश्य

स्थान—सोधा की पहाड़ियों में महाराणा का शिविर

[शिविर से कुछ हटकर एक ऊँची पहाड़ी की ओट में महाराणा प्रताप और भीलराज बातें कर रहे हैं]

प्रताप—हाँ तो भीलराज, मैं यह कह रहा था कि इस समय हमें सोधा की पहाड़ियों के अतिरिक्त सुरक्षित स्थान और कोई नहीं मिल सकता।

मेघाजी—आपका विचार ठीक है महाराणा ! लगता तो यही है कि हम शत्रु के हाथों से इस समय निकल ही आए हैं। दूर-दूर तक उनकी छाया नहीं दीखती।

प्रताप—तो सबसे जाकर कह दो कि हम कुछ दिन यहाँ विश्राम करेंगे ! आज बारहवाँ दिन है, घोड़ों की पीठ के अतिरिक्त अपना पड़ाव और कहीं भी तो नहीं बन सका। शत्रु आँधी और तूफान की तरह अपने पीछे पड़ा हुआ है।

मेघाजी—यह शाहबाज़खाँ अबकी बार मेवाड़ पर आक्रमण करने आया है। दीखता है, इसे अपनी वीरता पर अभिमान भी बहुत अधिक है।

प्रताप—अभिमान तो हमने अच्छे-अच्छों का नहीं छोड़ा भीलराज ! किन्तु क्या करें, नियति के इशारे अभी हमारी समझ में नहीं आ रहे। सैनिकों का इतना अभाव आज तक कभी भी नहीं देखा और जो कुछ थोड़े-बहुत हैं भी, उन्हें मैं व्यर्थ ही आग में झोंक देने का पक्षपाती नहीं हूँ। इधर देख ही रहे हो, भीषण अन्न-संकट का सामना करना पड़

रहा है। अच्छा, यह तो बतलाओ, तुमने स्वयं कितने दिनों से रोटी नहीं खाई !

मेघाजी—आपसे क्या छिपा है महाराणा ! पर इस तरह के छोटे-छोटे कारण हमें अपने पथ से विचलित नहीं कर सकेंगे। हम जब तक जियेंगे अपने आत्म-सम्मान और स्वतन्त्रता की रक्षा करते हुए जियेंगे। आज आपका नाम लेकर कोई भी देश-प्रेमी अपना मस्तक गर्व से ऊँचा कर सकता है और हमें तो इस बात का भी मान है कि हम आपके सैनिक हैं।

प्रताप—मैं स्वयं मेवाड़ का एक सैनिक हूँ। मुझ में और आप में कोई अन्तर नहीं है। मेवाड़ की रक्षा और स्वतन्त्रता की जितनी मुझ में लगन है उतनी ही आप में। फिर हम और आप तो पुराने साथी हैं।

मेघाजी—और रहेंगे ! (क्षणिक अवकाश) राणा जी, एक बात यह भी है कि अबकी बार शत्रु पर्याप्त मात्रा में रसद लेकर हमारा पीछा कर रहा है और हमें रसद इकट्ठी करने का अवसर ही नहीं मिल पा रहा !

प्रताप—यही बात है और इधर हम शत्रु के घेरे में फँसे हुए हैं। हमारी लूट-पाट भी बन्द है। वैसे भीलराज, यह भी प्रकृति का वरदान समझो कि हम किले में घिरे हुए नहीं हैं। प्रकृति के प्रांगण में हैं, जंगली कंद, मूल, फलों से अपना पेट भर सकते हैं।

मेघाजी—निश्चित ! वैसे हमने आपकी आज्ञानुसार सभी खड़ी-की-खड़ी फसलें जलवा दी हैं। ताकि वे कहीं शत्रु के हाथ में न पड़ जायँ।

प्रताप—(सांस भरकर) कोई समय था जब अपनी सेना का शिविर मीलों भूमि घेरता था, और एक समय यह है कि हम

सबको देखकर ऐसा अनुमान होता है जैसे कुछ यात्री तीर्थ-यात्रा के लिए निकले हों। (हँसते हैं) कभी-कभी मनुष्य को अपनी असमर्थता पर दुःख न होकर हँसी आती है और अब इसी स्थिति में हम भी हैं। लगभग दस वर्ष हुए, मुझे महाराणा बने, तब से आज तक कितने उतार-चढ़ाव देखे हैं जीवन में। कई बार ऐसा अनुभव किया है कि हम मृत्यु की बीहड़ घाटियों को पार करके आए हैं। पर अबकी बार तो समस्या ही बड़ी विचित्र है। महामन्त्री भामाशाह जी भी हमारे साथ नहीं हैं।

अमर—(आते हुए) मैं आप ही लोगों को ढूँढ़ रहा था, किधर चले गए थे।

प्रताप—यह स्थान कहाँ तक सुरक्षित है, मैं और भीलराज इधर-उधर घूमकर इसका निरीक्षण कर रहे थे। हमारा विचार है कि हम दो-चार दिन यहाँ रहकर यहाँ की स्थिति को भली भाँति देख लें।

अमर—जैसी आपकी आज्ञा! कम-से-कम एक बात की तो यहाँ सुविधा है, घोड़ों के चरने के लिए घास तो दीख ही रही है। हमें अपनी चिन्ता नहीं, किन्तु घोड़ों को खाद्य-पदार्थ मिलना चाहिए। उनमें जब तक चलने की शक्ति होगी, हमारी रक्षा करेंगे! इधर कुछ दूर हटकर एक निर्झरिणी है, सभी लोग उसके तट पर जाकर अपने-अपने अश्वों की थकावट उतार रहे हैं।

प्रताप—खान-पान की व्यवस्था तुम्हारे हाथ में है न इन दिनों!

अमर—जी पिता जी!

प्रताप—तो आज कुछ आशा करें या और दिनों की भाँति···

अमर—(बात काटकर) मैं आप लोगों को भोजन के लिए ही निमंत्रित करने आया हूँ। चलिए, हमने कुछ जंगली घासों

के बीज, कुछ जंगली घास और कुछ पेड़ों के पत्ते, इन सबको मिलाकर रोटियाँ तैयार करवाई हैं। बड़ों को एक-एक और बच्चों को आधी-आधी रोटी की व्यवस्था की गई है।

ताप—बहुत सुन्दर ! इससे अधिक की आशा करना भी व्यर्थ है।

[नेपथ्य में बच्चे के रोने का स्वर]

प्रताप—हैं, यह क्या ! किसी अनिष्ट की सूचना तो नहीं ! (ऊँचे स्वर में) क्या बात हुई महारानी !

[बच्ची रोती हुई आकर घुटनों से चिपट जाती है, साथ ही महारानी भी आती हैं]

प्रताप—क्या हुआ बेटी ! (पुचकारते हुए) हमें बता, तुझे किसने पीटा है ? हम उसे डाटेंगे, चुप हो जा, मेरी अच्छी बेटी !

बालिका—(रोती हुई) ऊँ, ऊँ। बन-बिलाव हमाली लोटी छीन-तल ले दया है, हम त्या ताएँ, हमत्तो बली भूथ लदी है !

प्रताप—चुप हो जा, रानी बेटी ! हम तुझे और रोटी देंगे। महारानी, इसे चुप कराओ, इसे और रोटी दो !

महारानी—रोटी तो और नहीं हैं। केवल चार रोटियाँ हैं और खाने वाले अभी आप लोगों सहित आठ-नौ हैं। दूसरे बच्चों ने भी अभी कुछ नहीं खाया। वे भी तो इसी की तरह दो दिन से भूखे सो रहे हैं, उठते ही रोटी माँगेंगे तो उन्हें क्या दूँगी ? (बच्ची रो रही है)

प्रताप—इसे चुप कराओ। हमारे हिस्से की रोटी भी इसे दे दो ! अमर ! बच्ची को रोटी लाकर दो।

अमर—जो आज्ञा ! (जाते हैं और रोटी लाकर बच्ची को देते हैं)

प्रताप—मैं ज्वालामुखी में अविचल भाव से खड़ा रह सकता हूँ, तूफान और आँधियों में चल सकता हूँ। महारुद्र के द्वारा

संयोजित उनके प्रलय नृत्य-में हँस सकता हूँ, गा सकता हूँ। विश्व की सामूहिक शक्तियों को अकेला कुचल सकता हूँ किन्तु किसी बच्चे की आँखों में आँसू नहीं देख सकता। न ही सुन सकता किसी अबोध बच्चे की चीख। मैं किसी को अपने लिए भूख से तड़प-तड़पकर मरते नहीं देखना चाहता, अब और सहन-शक्ति नहीं रही। बच्चे ही क्या, मैं बड़ों तक को देख रहा हूँ। छः-छः सात-सात दिनों से भूखे हैं और इस पर निरन्तर संघर्ष, निरन्तर सफर! किन्तु कब तक? आखिर मनुष्य हैं, मशीन तो नहीं। फिर मशीन भी तो अपने जीवन के लिए तेल माँगती है! भीलराज! यह क्या? आप लोगों की आँखों में आँसू!

मेघाजी—महाराणा, हम से अपकी उद्विग्नता नहीं देखी जाती। शान्त हो जाइए! आप समुद्र के सदृश गम्भीर हैं, आपके हृदय को उद्विग्नता शोभा नहीं देती। यदि आप ही इस तरह अधीर हो जायँगे तो हमारा क्या होगा?

प्रताप—सब ठीक होगा! अमर! कागज, मसि और लेखनी प्रस्तुत करो, शीघ्रातिशीघ्र?

अमर—पर पिता जी, इस समय इनकी आवश्यकता?

प्रताप—आवश्यकता है! अमर! मैं मुगल-दरबार से सन्धि करना चाहता हूँ। मैं अब नहीं देख सकता कि मेरे कारण मेरे साथी, बच्चे और मेरी पत्नी भूख से तड़प-तड़पकर जान दें। कोई तुम्हें देखकर कह सकता है कि तुम मेवाड़ के युवराज हो, यह मेवाड़ की महारानी है। कभी स्वप्न में भी ऐसी आशा हो सकती थी। न तन पर वस्त्र, न मुख पर कान्ति, जब किसी को अन्न का एक दाना भी खाने को नहीं

मिलेगा तो कान्ति कहाँ से आयगी ! वनचरों से भी बुरा जीवन है ।

प्रभामयी—पर देव, आप इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकते कि हम लोग इस जीवन में आपके साथ कितने सुखी हैं ?

प्रताप—कल्पना का प्रश्न ही नहीं है महारानी ! मैं सब-कुछ अपनी आँखों से देख रहा हूँ । जाओ अमर, शीघ्र ही इन वस्तुओं को लेकर आओ !

अमर—पर पिता जी !' ' '

प्रताप—मैं कुछ भी नहीं सुनना चाहता । मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं अब तुम लोगों को दुखी नहीं देखूँगा ।

मेघाजी—पर राणा जी ! हम इन दुःखों में रहने के अभ्यस्त हो गए हैं। हम अभी कहीं शत्रु की किसी टुकड़ी पर छापा मार-कर अन्न का प्रबन्ध करते हैं । साँझ आते-आते बच्चों के खाने के लिए सामग्री बटोर ही लायँगे !

प्रताप—यह सब कुछ कब तक चलेगा भीलराज ! हम लोग अब गिनती में हैं ही कितने । यदि इनमें से भी कुछ साथी खो देंगे तो एक दिन ऐसा आयगा कि इस बीहड़ निर्जन में किसी से बात करने के लिए तरसोगे । शत्रुओं की संख्या कितनी अधिक है कभी इस बात का भी ध्यान किया है तुमने ? कहना मानो । मुझे शीघ्र ही यह पत्र लिखने दो ।

अमर—और लोगों को भी आने दीजिए । बच्ची को रोटी दे दी गई, वह चुप हो गई है । आप लोग भी कुछ भोजन कर लें, तत्पश्चात् सबके साथ बैठकर सोच लिया जायगा ।

प्रताप—अब मैं अधिक सोचना नहीं चाहता । जीवन के कितने

ही वर्ष सोचने-ही-सोचने में बीत गए हैं। शीघ्रता करो, अमर !

बच्ची—पिता जी ! हम ओल लौटी थायँगे, हमतो औल भूथ लदी है।

प्रताप—प्रभामयी, बच्ची को और रोटी दो। मेरी बच्ची, अब तुम्हें कभी भी भूख नहीं सतायगी।

प्रभामयी—इससे तो अच्छा था कि यह बच्ची मेरे होती ही नहीं।

प्रताप—चुप रहो महारानी ! यह अपशब्द मैं नहीं सुनना चाहता। मैं भी मानव हूँ, मेरे पास भी पिता का हृदय है और उस हृदय में अपनी सन्तान के लिए ममता भी है। जाओ अमर ! उन सब सैनिकों से कह दो कि वे अपने में स्वतन्त्र हैं। (सांस भरकर) महाराणा आज महाराणा नहीं रहा। वह भी पथ की ठोकर खाकर चीख उठने वाला एक साधारण प्राणी है। अमर ! शीघ्र ही मसि और लेखनी लाओ। (अमर नहीं जाते) जाओ अमर !

[पटाक्षेप]

द्वितीय अंक

प्रथम दृश्य

स्थान—दिल्ली में राज-कवि पृथ्वीराज के भवन का एक सुसज्जित कमरा

(कमरे में सभी सुन्दर वाद्य-यन्त्र रखे हैं। रानी किरणमयी बैठी वीणा बजा रही है, वीणा-वादन के कुछ देर उपरान्त गीत भी गाती है)

गीत

चाहता है मन करूँ तुमसे हँसी, पर बेबसी है।
क्यों कहूँ तुमसे हृदय - धन
मृदु प्रणय की याचना में
कर रही जब चिर दिनों से
मूक बनकर साधना में
अधर पर मुस्कान मेरे हृदय में पीड़ा बसी है।
चाहता है मन करूँ तुमसे हँसी, पर बेबसी है ॥१॥
मैं सुखद आलोकमय मृदु-
स्निग्ध चन्दा की किरण हूँ।
वेदनाओं को सदा हँसते—
हुए करती वरण हूँ ॥
भावना ने प्राण ! मनहर कल्पना मेरी ग्रसी है।
चाहता है मन करूँ तुमसे हँसी, पर बेबसी है ॥२॥

[गीत समाप्त होता है। पृथ्वीराज का प्रवेश]

पृथ्वीराज—बहुत सुन्दर, बहुत ही सुन्दर ! गायिका, महाराज

पृथ्वीराज तुम्हारी इस संगीत-लहरी पर प्रसन्न हुए। शीघ्र ही पुरस्कार की कामना करो। हम तुम्हें मुँहमाँगा इनाम देंगे !

किरण—धन्यवाद, पहले यह बतलाइये, इस तरह मौन साधकर कितनी देर से खड़े हुए हैं !

पृथ्वीराज—सम्भवतः प्रथम पंक्ति तुमने प्रारम्भ की ही होगी, तभी आ गया था। सोचा, यदि तुम्हें पुकारा तो इस रस-धारा से वंचित हो जाऊँगा ? अनेकों बार कह चुका हूँ, फिर भी कहना पड़ता है—तुम्हारे इस मधुर कंठ से न जाने मुझे क्यों ईर्ष्या होती है ?

किरण—मेरा स्वर तो तुम्हारा ही है स्वामी !

पृथ्वीराज—चतुर हो, तुम्हें बातों में जीतना असम्भव है।

किरण—चले गये थे ? कहाँ से आ रहे हो इस समय !

पृथ्वीराज—न जाने क्यों, आज हृदय कुछ बोझल-सा था, अब्दुल रहीम खानखाना के पास चला गया। कुछ देर इधर-उधर की बातें चलीं तत्पश्चात् काव्य-धारा बह निकली। वाह, क्या कहने, कितना सुन्दर लिखता है वह व्यक्ति। वास्तव में ही सरस्वती उन्हें सिद्ध है। जितना मधुर लिखता है उतना ही मधुर और स्वच्छ हृदय उन्हें ईश्वर ने दिया है। निष्कपट, निश्छल !

किरण—तब तो आप दोनों ने ही एक दूसरे को काफी रचनाएँ सुनाई होंगी !

पृथ्वीराज—और क्या ! बहुत देर तक साहित्य-चर्चा होती रही। यदि आज राजा मानसिंह को भोजन के लिए निमंत्रित न किया होता तो सम्भवतः कुछ देर और बैठता ! वे भी आने ही वाले होंगे, वैसे तुम्हारी ओर से तो भोजन में कोई देर नहीं है।

किरण—अभी पाकशाला से ही आई हूँ। सेविकाएँ अपना काम कर रही हैं। सब-कुछ ठीक है। बस उनके आने की ही देर है।

पृथ्वीराज—(सोचते हुए) तब ठीक है, अपने तो इने-गिने ही चित्र हैं, वही अपनी दुनिया है। न जाने क्यों इस विशाल नगरी में अपना मन नहीं लग पाया !

किरण—यह आपने मेरे हृदय की बात कही—मैं भी कुछ क्षण पूर्व आप से यही कहने वाली थी। यह राजनीतिज्ञों की नगरी है जिनका काम सुबह से शाम तक एक दूसरे की बुराइयाँ करना है। कलाकार नाम का प्राणी यहाँ के विषाक्त वातावरण में नहीं पनप सकता, उसकेलिए स्वच्छ और मधुर वातावरण चाहिए। (कुछ क्षण बाद) चलो स्वामी, यहाँ से चलें।

पृथ्वीराज—(उत्सुकता से) कहाँ ?

किरण—बीकानेर ! अपने उस मरु प्रदेश में यहाँ से कहीं अधिक शान्ति है। यहाँ तो प्रत्येक क्षण युद्ध के मारू-राग ही गाये जाते हैं। आज सेनाएँ उसे जीतने चली हैं। आज बादशाह ने इधर आक्रमण कर दिया है तो कल उधर। यह रक्त-पिपासु शासक, इनके यहाँ कोमलता और मधुरता का काम ही क्या ? (आग्रह से) चलिए स्वामी, शीघ्र ही यहाँ से चलें !

पृथ्वीराज—(सांस भरकर) हम विवश हैं किरण ? स्वतन्त्र होते हुए भी, राज-कवि कहलाते हुए भी, हम परतन्त्र रूप में बादशाह के यहाँ बन्दी हैं। कुछेक देर के लिए बीकानेर जा सकते हैं, सदैव के लिए नहीं ! सदैव के लिए जाने की क्षमता होती तो हम यहाँ आते ही क्यों ? (सांस भरकर) बादशाह अकबर बहुत चतुर है, उसने प्रत्येक प्रान्त,

प्रत्येक राज्य के मस्तिष्क अपने पास बुलाकर रखे हुए हैं, क्योंकि उनका अपने प्रान्तों में रहना किसी समय भी मुग़ल साम्राज्य के लिए हानिकारक हो सकता है। न ये अपने-अपने प्रान्तों में होंगे, न वहाँ जागरण की भावना जन्म लेगी और न वहाँ विद्रोह होगा। मेरे कवित्व की बादशाह को कोई आवश्यकता नहीं है, केवल मेरी आवश्यकता है, वह भी इतनी ही कि मैं उसकी आँखों के सम्मुख रहूँ, इससे अधिक नहीं।

किरण—स्वामी! फिर भी आप वहाँ रह रहे हैं।

पृथ्वीराज—निरुपाय हूँ किरण! बीकानेर में अकबर से लोहा लेने की शक्ति नहीं, यह समझ लो कि मैं बीकानेर राज्य की ओर से बादशाह के समक्ष एक भेंट हूँ। यह उनकी अनुकम्पा है कि वे मुझे विशेष सम्मान देते हैं।

किरण—स्वामी! मेरे कारण आज आपका हृदय दुखी हुआ।

पृथ्वीराज—दुःख की इसमें कोई बात नहीं प्रिये! जो यथार्थ है, एक कटु सत्य की तरह प्रतिक्षण सामने है उससे दुख कैसा। उससे मेरे इस घाव को कुरेदकर तुमने अच्छा ही किया, जलन कुछ देर के लिए कम हुई। तुम बीकानेर जाना चाहो तो जा सकती हो।

किरण—नहीं स्वामी यह कैसे हो सकता है, जहाँ आप हैं वहीं मैं हूँ। आपकी छत्र-छाया में मुझे नरक भी स्वर्ग के समान सुखद है।

[द्वारपाल का प्रवेश]

द्वारपाल—स्वामी! अन्नदाता!

पृथ्वीराज—कहो, कोई विशेष बात है?

द्वारपाल—हाँ, अन्नदाता! कुँवर मानसिंह जी आपके दर्शनार्थ आए हैं।

पृथ्वीराज—उन्हें सादर लिवा लाओ। किरण, तुम जाओ और भोजन का प्रबन्ध करो।

[किरण द्वार खोलकर जाती है, कुछ ही देर बाद मानसिंह का प्रवेश। पृथ्वीराज अभिवादन करते हैं]

पृथ्वीराज—(व्यंग्य से) विजेता महाबली मानसिंह को कवि पृथ्वीराज का प्रणाम !

मानसिंह—(मुस्कराकर) जीते रहो ! पर पृथ्वीराज, 'विजेता' शब्द का तुम्हारा अभिप्राय हम नहीं समझे। समझ में नहीं आता कि तुमने हमारा अपमान किया है या सम्मान !

पृथ्वीराज—मेरा अभिप्राय हल्दीघाटी के युद्ध-विजेता से था।

मानसिंह—उपहास मत करो मित्र ! (कुछ क्षण रुककर) वह युद्ध नहीं था पृथ्वीराज ! मैंने अनेकों युद्ध देखे, पर ऐसा युद्ध कभी नहीं देखा।

पृथ्वीराज—वह युद्ध नहीं था तब फिर वह क्या था ?

मानसिंह—तुमने कभी भूकम्प आते देखे हैं, तो बस समझ लो वह एक महान् भूकम्प था। ऐसा लगा जैसे पहाड़ फट पड़ा हो। आँधी और तूफान द्रुत गति से एक साथ चले आ रहे हों। उस दिन दिन भर भूकम्प होता रहा। अब तुम स्वयं ही अनुमान लगा लो कवि कि वह युद्ध किस प्रकार का रहा होगा ! मैं अनेकों युद्धों का विजेता उस दिन हतप्रभ था। आश्चर्यचकित प्रताप के युद्ध-कौशल को देखता रहा। वह हमारी हरावल को चीरता हुआ, आगे बढ़ा, मुझ पर भाले से वार किया। मैं हाथी से कूदकर बच निकला। (भावावेश में) मैं जिस युद्ध का वर्णन कर रहा हूँ तुम उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते कवि !

पृथ्वीराज—ठीक कहते हैं महाराज, वास्तव में ही आप ठीक कहते

हैं। वीर वही है जो मुक्त कंठ से अपने शत्रु की प्रशंसा कर सके।

मानसिंह—उसी दिन से प्रताप की प्रशंसा करने को जी कर रहा था। पर किसी के सामने अपना हृदय नहीं खोल सका। लोग अर्थ का अनर्थ कर देते हैं।

पृथ्वीराज—ठीक कहते हो मित्र !

मानसिंह—मुझे अपने जीवन की एक घटना उन दिनों बहुत बार याद आई, सम्भवतः मैंने पहले भी तुम्हें सुनाई हो।

पृथ्वीराज—हो सकता है, लेकिन फिर दुहराइयेगा !

मानसिंह—मैं जितना रूपवान हूँ वह तो सब जानते ही हैं, किसी से छिपा ही क्या है ! जब मैं बादशाह के यहाँ पहली बार आया तो अकबर मुझे देखकर बहुत हँसे और बोले—'मानसिंह तुम उस समय कहाँ थे जब खुदा के यहाँ हुस्न बट रहा था ?' मैंने हँसकर उत्तर दिया—'मैं वहाँ था जहाँपनाह जहाँ वीरता बट रही थी, और मैंने अपने से अधिक भाग किसी को नहीं लेने दिया।'

पृथ्वीराज—बहुत सुन्दर उत्तर रहा। बादशाह लज्जित हो गए होंगे !

मानसिंह—हाँ ! किन्तु उस दिन हल्दीघाटी के युद्ध में मुझे लज्जित होना पड़ा ! मुझे अनुभव हुआ, मानो राणा प्रताप ईश्वर के यहाँ से वीरता का बहुत बड़ा भाग लेकर मुझ से पहले ही चले आए थे।

पृथ्वीराज—एक बात पूछूँ मित्र !

मानसिंह—पूछो ! तुम्हारे सामने आज हृदय के सभी उद्गार प्रकट करने आया हूँ।

पृथ्वीराज—तुमने युद्ध-क्षेत्र से लौटते हुए प्रताप का पीछा क्यों नहीं किया ?

मानसिंह—(हँसकर) इस प्रश्न का उत्तर तो तुम्हें अनेकों मुखों से अनेकों प्रकार का मिल चुका होगा।

पृथ्वीराज—फिर भी तुम्हारे ही मुख से इसे सुनना चाहता हूँ। क्योंकि जानता हूँ तुम अतिशयोक्ति से पूर्ण बात नहीं करोगे। तुम्हारे पीछे बादशाह को बहुत से लोगों ने तुम्हारे विरुद्ध बहुत-कुछ कहा। मैंने तो यहाँ तक सुना है कि बादशाह तुम से बहुत असंतुष्ट हैं।

मानसिंह—हो सकता है। जीवन में कुछ भी असम्भव नहीं है। अपना स्थान बनाने के लिए कई बार व्यक्ति अपने मित्रों से भी दुराव कर जाता है। फिर बादशाह के सेनापतियों का जहाँ तक प्रश्न है, सभी लोग मुझ से ईर्ष्या करते हैं। किन्तु पृथ्वीराज, जब तक मेरा यह खड्ग मेरे साथ है मुझे किसी की चिन्ता नहीं। मैं शक्ति का उपासक हूँ। चापलूस बनकर नहीं जी सकता। मैं हल्दीघाटी के युद्ध का सेनापति था, मैंने वही किया जो मुझे ठीक जँचा।

पृथ्वीराज—बादशाह से यहाँ तक कहा गया है कि मानसिंह हृदय से प्रताप का अनिष्ट नहीं चाहते थे। नहीं तो प्रताप हमारी सेना के मध्य में से निकल कैसे जाता?

मानसिंह—(हँसकर) जैसे अब शाहबाजखाँ के घेरों में से निकल रहा है। दूसरों पर दोषारोपण करना बहुत आसान है किन्तु स्वयं करके दिखाना उतना ही कठिन है। रही प्रताप का पीछा न करने की बात। वह मुझे उस समय जँची नहीं। प्रबल शत्रु को मिट्टी का खिलौना समझना भयंकर मूर्खता है और तब तक निश्चित रूप से किसी की हार-जीत तो हुई नहीं थी। अचानक ही राणा युद्ध से चला गया, राजपूत सेनाएँ पीछे हट गईं। वहाँ की पहाड़ियाँ चतुर्दिक भीलों से पटी पड़ी थीं। अब समझे

कविवर, उस समय पीछा करना इतना आसान नहीं था।

पृथ्वीराज—(गम्भीरता से) मित्र, यदि मैं दृढ़तापूर्वक यह कहूँ कि तुम वास्तव में ही हृदय से प्रताप का अनिष्ट न तब चाहते थे न अब चाहते हो...

मानसिंह—(कठोरता से) पृथ्वीराज! हर बात की एक सीमा होती है, उसे लाँघने की चेष्टा मत करो। (नम्रता से) यह धन-पतियों की दुनिया है। आज की दुनिया में धन से क्या नहीं मोल लिया जा सकता। दूसरों की क्या कहें। हम राजा और महाबली कहलाने वाले तक बिके हुए हैं। (धीरे से) हो सकता है, धन के प्रलोभन में तुम्हारा द्वार-पाल बादशाह का निजी गुप्तचर ही हो। इसीलिए कवि एक सीमा में रहने का प्रयत्न करो।

पृथ्वीराज—ठीक कहते हो मित्र! किन्तु यह भृत्य बीकानेर का है और मेरा पुराना दास है, विश्वस्त व्यक्ति है। फिर मैं इन बातों से स्वयं सावधान रहता हूँ।

मानसिंह—इस युद्ध में एक विचित्र बात सुनने को मिली पृथ्वी-राज! जो बाद में मेरे विशेष गुप्तचरों ने मुझे सुनाई।

पृथ्वीराज—(उत्सुकता से) क्या? शीघ्र कहो मित्र, हम भी तो सुनें!

मानसिंह—अल्बदायूनी ने आसफख़ाँ से युद्ध के समय कहा—'अपने और राणा की ओर के राजपूतों की कोई पहचान नहीं हो रही! एक ही जैसी वेश-भूषा है। क्या करें कुछ समझ में नहीं आता।'

पृथ्वीराज—क्या वास्तव में ही दोनों पक्ष के राजपूत वीरों की पहचान कठिन थी?

मानसिंह—उनके लिए हो सकती है। राजपूती पहरावा, जो एक

ही प्रकार का है। इस पर जानते हो आसफखाँ ने क्या उत्तर दिया।

पृथ्वीराज—मैं घर बैठा व्यक्ति भला कैसे जान सकता हूँ।

मानसिंह—आसफखाँ ने कहा—'इसमें ऐसा सोचने की क्या बात है। तुम अन्धाधुन्ध तीरों की वर्षा करो। किसी तरफ का राजपूत हो, हमें उसके मरने में ही लाभ है। हर-एक राजपूत हमारा शत्रु है।' (कुछ क्षण रुककर) इस प्रकार की बहुत सी बातों को सुनकर मेरे हृदय में प्रबल अन्तर्द्वन्द्व मचा हुआ है।

पृथ्वीराज—वास्तव में ही मित्र! यह बात तुमने अद्भुत ही सुनाई, क्या तुमने बादशाह को भी इस विषय में कुछ कहा?

मानसिंह—परसों एकान्त में मेरी और उनकी बहुत सी बातें हुईं। कई बातों पर वे अत्यधिक रुष्ट हुए। मैंने भी अपने हृदय की भावनाएँ ज्वालामुखी के रूप में प्रकट कीं। यह बात भी कही। वातावरण विषाक्त हो चला था। पर तुम जानते ही हो, वह नीति-कुशल प्राणी है। साम, दाम, दण्ड, भेद हर प्रकार से काम लेना वह व्यक्ति जानता है। बाद में शान्त भाव से बोले—'मैं आसफखाँ इत्यादि को उचित दण्ड दूँगा, फर्ज़न्द! मेरे साम्राज्य में इस तरह की साम्प्रदायिक नीति नहीं चल सकती। हिन्दू और मुसलमान दोनों मेरी दो आँखें हैं।'

पृथ्वीराज—हूँ! तब तो ठीक है। वैसे राजपूत सेनापतियों में तुम्हीं एक व्यक्ति हो जिनसे वे कुछ दबते भी हैं। (व्यंग से) फिर दबें भी क्यों न, तुम उनके फर्ज़न्द जो ठहरे! फर्ज़न्द-जैसी उपाधि प्राप्त करना कोई छोटी बात नहीं है मानसिंह!

मानसिंह—व्यंग न करो पृथ्वीराज ! पहले मैं बातें सुनता था और उन्हें व्यर्थ की समझकर उड़ा देता था, किन्तु अब अनुभव करने लग गया हूँ।

पृथ्वीराज—शुभ लक्षण हैं।

मानसिंह—अनुभव करता हूँ, अकबर के लिए प्रताप का होना आवश्यक है।

पृथ्वीराज—(आश्चर्य से) मानसिंह !

मानसिंह—हाँ पृथ्वीराज ! इन दिनों मेरा हृदय विपरीत भावनाओं का युद्ध-स्थल बना हुआ है।

[एक दासी का प्रवेश]

दासी—अन्नदाता ! रानी जी भोजन के लिए आप लोगों को बुला रही हैं।

पृथ्वीराज—कहो, हम आते हैं ?

[दासी का प्रस्थान]

दासी—जो आज्ञा !

पृथ्वीराज—आओ मित्र ! अब कुछ देर वहीं बातें होंगी। (हँसकर) यदि तुम हमारा आतिथ्य स्वीकार न करते तो हमारी रानी रूठ जातीं। तुम हमारे मित्र हो, तुम्हारे आतिथ्य का अवसर उसे फिर कब मिलेगा ? वर्षों बाद तो कभी-कभी तुम्हारे दर्शन होते हैं, तुम्हें युद्धों से अवकाश ही नहीं मिलता।

मानसिंह—(हँसते हुए) हमने भी सोचा—'हमारे कारण तुम से तुम्हारी रानी रुष्ट न हो।' (हँसते हैं)

[दोनों का हँसते हुए प्रस्थान, कुछेक क्षण रंगमंच पर अन्धकार, तत्पश्चात् फिर बातें करते हुए दोनों का प्रवेश]

मानसिंह—(इस भाव से जैसे बातें पहले से ही होती आ रही हैं) उत्थान, पतन, जीवन की राह पर इन दोनों के दर्शन किसी-

न-किसी रूप में मानव को अवश्य ही होंगे। रही सम्राट् के रुष्ट होने की बात; उसके विषय में अपना मत यह है कि रानी रूठेगी तो अपना ही सुहाग उजाड़ेगी हमारा क्या लेगी। अब शीघ्रता करो, दरबार में हमारी प्रतीक्षा हो रही होगी।

पृथ्वीराज—देर होने की अब बात ही क्या है। कुछ ही क्षणों में चलते हैं।

[द्वारपाल का घबराये हुए प्रवेश]

द्वारपाल—अन्नदाता ! जहाँपनाह आप से मिलने आ रहे हैं।

पृथ्वीराज - क्या कहा, जहाँपनाह ! इस समय और यहाँ।

मानसिंह—हो सकता है, उनसे सब सम्भव है। दरबार में बैठे हुए अचानक ही किसी बात से हृदय उद्विग्न हो गया हो। सोचा होगा, चलो पृथ्वीराज की काव्य तरंगिणी में ही कुछ देर डुबकी लगा आयँ। सोचा और आ गए।

[स्वागतार्थ मानसिंह और पृथ्वीराज दोनों जाते हैं, कुछ देर बाद ही अकबर और रहीम सहित उनका प्रवेश]

अकबर—अच्छा हुआ फर्ज़न्द, तुम भी हमें यहीं मिल गए।

मानसिंह—आज कविवर ने हमें भोजन पर अपने यहाँ निमंत्रित किया था। हम और कहीं न जायँ, किन्तु पृथ्वीराज की आज्ञा कैसे टाल सकते हैं।

अकबर—यह तो रहीम खानखाना से हमें मालूम हो गया था। तभी तो हम यहाँ आए !

पृथ्वीराज -हम अब दरबार में आने ही वाले थे किन्तु आप यहाँ।

मानसिंह—क्या आज दरबार नहीं लगा ?

अकबर—दरबार क्यों न लगता, दरबार लगा और लगते ही एक ऐसी विचित्र घटना घटी जिसके कारण मेरी खुशी का

कोई ठिकाना न रहा। इस वक्त तुम लोगों का वहाँ होना आवश्यक था। मैंने तुम लोगों के न आने का कारण पूछा।

रहीम—तभी मैंने बताया कि आप लोग यहाँ हैं।

अकबर—दरबार उसी समय बरखास्त कर दिया गया। राज्यभर में सात दिन तक राग-रंग मनाने का हुक्म दे दिया और बीरबल से कहा कि हमारी ज़िन्दगी की इस बहुत बड़ी जीत की खुशी में दिल्ली को नई दुलहिन की तरह सजाया जाय। (उल्लास से) अब तुम दोनों इस बात का अन्दाजा लगाओ कि वह बात क्या हो सकती है जिसके कारण आज हम इतने खुश हैं।

(कुछ क्षण बाद) बोलो, पृथ्वीराज बोलो, चुप क्यों हो, तुम बहुत बड़े ज्योतिषी हो, आज अपने ज्योतिष को आजमाओ और बताओ कि हम आज इतने खुश क्यों हैं?

रहीम—सोचो मित्र, वह कौन सी बात हो सकती है जिसके कारण हिन्दुस्तान के बादशाह क्षण भर में दरबार को समाप्त करके तुम्हारे यहाँ उपस्थित हुए हैं।

पृथ्वीराज—मेरी तो समझ में कुछ नहीं आ रहा। और जहाँ तक यहाँ आने का प्रश्न है वह शहंशाह की सहृदयता है। आप अपने सभासदों को यह सम्मान देते ही रहते हैं। मेरा सौभाग्य है कि मेरी कुटी पवित्र हो गई।

अकबर—कविवर तो कविता करने लग गए, लेकिन मेरी खुशी का कारण तुम्हीं सोचो फर्ज़न्द!

मानसिंह—(मुस्कराकर) मैं ज्योतिषी नहीं हूँ। (कुछ रुककर) अच्छा तो आप ही हमें बता दें। हमारी उत्सुकता चरम सीमा पर आ गई है।

अकबर—सुनो मानसिंह! जिस काम को तुम्हारे-जैसा बे-जोड़

बहादुर नहीं कर सका; मुगल सल्तनत के अनेकों सेनापति नहीं कर सके; अनगिनत सेनाएँ नहीं कर सकीं। वह काम उस नेक परवरदिगार ने हम पर खुश होकर अपने-आप कर दिया है। (भावावेश में) हमारी जुबान बयान नहीं कर सकती कि हम आज कितने खुश हैं।

मानसिंह—हम से पहेलियाँ न बुझवाइए। शीघ्र बता दें ताकि हम भी आपकी खुशी में सम्मिलित हो सकें।

अकबर—दोस्तो ! ध्यान से सुनो, महाराणा प्रतापसिंह ने हम से सुलह कर ली है।

मानसिंह—अपराध क्षमा हो। (व्यंग्य से) कहीं आप सपना देखकर तो नहीं आ रहे हैं।

अकबर—(कठोरता से) फर्जन्द ! तुम हिन्दोस्तान के बादशाह से बातें कर रहे हो। हम बिना सोचे-समझे कोई बात अपनी जुबान से नहीं कहते।

पृथ्वीराज—ठीक कहते हैं जहाँपनाह ! पर न जाने क्यों हृदय को इस बात पर विश्वास नहीं होता।

अकबर—तुम्हें एकदम विश्वास हो भी नहीं सकता। (पत्र देते हैं) लो इस पत्र को पढ़ो।

[पृथ्वीराज पत्र पढ़ते हैं, मुख पर कई प्रकार के भाव आते-जाते हैं]

अकबर—क्यों पृथ्वीराज, अब भी तुम्हें कुछ कहना है ?

पृथ्वीराज—बात मेरी तो समझ में नहीं आई। मुझे तो ऐसा लगता है कि आपको किसी ने धोखा दिया है।

अकबर—पृथ्वीराज !

पृथ्वीराज—(दृढ़ता से) मैं महाराणा के हस्ताक्षर अच्छी तरह पहचानता हूँ, यह उनके हस्ताक्षर नहीं हैं।

अकबर—क्या कहा, यह उनके हस्ताक्षर नहीं हैं। (पृथ्वीराज के

मुख पर तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हैं) ध्यान से देखो, पहचानने की कोशिश करो।

पृथ्वीराज—मैं ठीक कह रहा हूँ जहाँपनाह ! साथ ही एक वात और भी सोचने की है। उन्होंने जिन्दगी में वड़े-वड़े वेगवान तूफान देखे हैं, तव वह कभी विचलित नहीं हुए। और इधर जव कि हम इन दिनों मेवाड़ में कोई वहुत वड़ी लड़ाई भी नहीं कर रहे तव उन्हें ऐसा कौन सा कष्ट हो सकता है, जिससे घवराकर वह सन्धि करना चाहते हैं।

अकबर—यह मत भूलो पृथ्वीराज कि इन्सान की हर मंजिल पर इन्सान है।

पृथ्वीराज—मैं मानता हूँ फिर भी यदि आप कहें तो मैं महाराणा को व्यक्तिगत पत्र लिखकर पूछूँ कि इस वात में कितनी सचाई है।

अकवर—(फीकी हंसी) इस वात की सचाई में हमें तो कोई सन्देह नहीं है। हाँ यदि तुम अपने विश्वास के लिए पूछना चाहो तो पूछ सकते हो और सुनो, इसका जो उत्तर आयगा। वह तुमको खुद दरवार में पढ़कर सुनाना होगा। आओ रहीम चलें।

पृथ्वीराज—क्या कुछ देर वैठियेगा नहीं ? कुछ जल-पान······

अकबर—(वात काटकर) नहीं, नहीं इस समय नहीं। फिर कभी सही, तुमने हमारे हृदय में···आओ फर्जन्द ! आओ रहीम ! (जाते हैं)

[पीछे-पीछे सवका प्रस्थान। कुछ देर वाद ही पृथ्वीराज का उद्विग्नावस्था में प्रवेश। पत्र को देखते हुए वेचैनी से इधर-उधर घूमते हैं।]

पृथ्वीराज—(ऊंचे स्वर में) किरण, किरण !

किरण—(आते हुए) क्यों, क्या बात है राजन् ! आप इतने विक्षिप्त क्यों दीख रहे हैं ?

पृथ्वीराज—विक्षिप्त ! विक्षिप्त ही समझो ! किरण, आज पागल हो जाने को जी चाहता है। एक समाचार है, सुन सकोगी ? सुनने से पहले कान बहरे हो जाय तो…

किरण—(घबरा जाती है) कहते क्यों नहीं क्या बात है ? मैंने आज तक आपको इतना अधिक अधीर कभी नहीं पाया। जो कुछ भी कहना है, शीघ्र कहो। मेरे प्राण शुष्क हो रहे हैं।

पृथ्वीराज—आज हिमालय धरती पर झुक गया है किरण ! आज समुद्र ने अपनी मर्यादा छोड़ दी है। हमारे जीवन का स्वप्न आज सहस्रों कण बनकर धूल में मिल गया है। अब जीवन की आकांक्षा नहीं रही। इच्छा होती है कि विष के तरल सिन्धु में छलाँग लगा दूँ।

किरण—जो कुछ भी हो, कहो ! मैं सिसोदिया वंश की कन्या हूँ। मेरे पास पाषाण की तरह दृढ़ हृदय है। मेरे वंश का सूर्य आज भी भारत के आकाश में शक्तिशाली बनकर चमक रहा है।

पृथ्वीराज—अब इस बात का गर्व न करो रानी ! वह ज्योतिर्मय पिण्ड आकाश से टूटकर रसातल को चला गया है। दुनिया में अन्धकार-ही-अन्धकार है। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। आज महाराणा प्रताप ने अकबर की आधीनता स्वीकार कर ली है।

किरण—(आश्चर्य से ऊँची आवाज में) राजन् !

पृथ्वीराज—मैं आज एक भिखारी से बढ़कर कुछ भी नहीं हूँ। जानती हो, सम्राट् अभी-अभी यहाँ आये थे केवल यही

संवाद देने। आज उनकी दृष्टि में मुझ से अधिक दयनीय और कोई नहीं।

किरण—देव! न जाने क्यों आपकी बातों पर विश्वास नहीं होता।

पृथ्वीराज—यदि कोई और आकर मुझे यह कहता तो मैं भी इस पर कभी विश्वास नहीं करता। किन्तु अपनी आँखों पर कैसे विश्वास न करूँ। सम्राट् के आनन्द का पारावार नहीं था। उन्होंने असीम उल्लास से यह पत्र मुझे दिया। क्या तुम कह सकती हो कि मैं महाराणा के हस्ताक्षर नहीं पहचानता, किरण! मैं अब यहाँ नहीं रहूँगा।

किरण—इस तरह अधीर होने से काम नहीं चलेगा राजन्! हमें इसके लिए कुछ प्रयत्न करना चाहिए। महाराणा के झुकने का अर्थ है समस्त देश के गौरव का धूल में मिल जाना। आप कलाकार हैं, आपको इस समय कुछ चमत्कार दिखाना चाहिए।

पृथ्वीराज—यही सोच रहा हूँ कि एक बार गिरते हुए हिमालय को रोकने का प्रयत्न कर देखूँ। सिन्धु से कहूँ कि वह अपनी सीमा में ही रहे। (रुककर) देखो, भविष्य के गर्भ में क्या है?

किरण—भविष्य को छोड़कर वर्तमान की चिन्ता कीजिए। आज आपको अपनी लेखनी की शक्ति मापनी है महाकवि! विश्व देखेगा कि आपकी वाणी में कितना ओज है।

पृथ्वीराज—मुझे विश्व को अपना ओज दिखाने की आकांक्षा नहीं है। मैं तो आर्य जाति के एक-मात्र रक्षक को बतलाना चाहता हूँ कि आप अपने पथ से भ्रष्ट हो रहे हैं। शीघ्र ही तुम किसी सेवक के द्वारा मेरे व्यक्तिगत संदेश-वाहक को

बुला दो। मैं चाहता हूँ कि उसे आज ही महाराणा के पास प्रस्थान कर देना चाहिए।

किरण—आप पत्र लिखें तो सही।

पृथ्वीराज—मैं महाराणा के गौरवान्वित अतीत को फिर एक बार उनके सामने लाना चाहता हूँ।

किरण—हो सकता है किसी आवेश के क्षण में उन्होंने यह पत्र लिख दिया हो, किन्तु यदि आप स्वयं ही वहाँ जायँ तो उचित रहे।

पृथ्वीराज—बावली हुई हो। मुझे यहाँ से कौन जाने देगा। क्योंकि मैंने सम्राट् से कहा है कि मेरे विचार में यह पत्र नकली है। यह महाराणा के हस्ताक्षर नहीं हैं। मेरे जाने की बात सुनते ही उन्हें हमारी चतुराई पर सन्देह हो जायगा। इसलिए इस काम में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है।

किरण—(सोचती हुई) यदि आपको मुझ पर पूर्णरूपेण विश्वास हो, तो मैं जाऊँ।

पृथ्वीराज—(उल्लास से) तुम! सुझाव तो अच्छा है किन्तु इस समय तुम्हारे यहाँ से जाने का पता यदि किसी को भी लग गया तो ठीक न होगा। फिर पथ की कठिनाइयों का भी प्रश्न है।

किरण—कोई चिन्ता की बात नहीं। मेरे साथ मेरी सखी जयदेवी जायगी। हम पुरुष-वेश धारण कर लेंगी। साथ में सात-आठ विश्वस्त व्यक्ति दे दीजिए। द्रुतगामी घोड़े छाँट दीजिए। बचपन में सीखी हुई युद्ध-कला सम्भवतः कहीं काम आ जाय।

पृथ्वीराज—अच्छा देवि, यह श्रेय एक वीर नारी को ही मिलना चाहिए।

किरण—समझो स्वामी ! अब तुम्हारी किरणमयी, किरणसिंह हुई ।

पृथ्वीराज—(हँसकर) अच्छा, वीरवर किरणसिंहजी, अपने जाने की तैयारी कीजिएगा, मैं भी चलकर पत्र लिखूँ ।

[दोनों जाते हैं]

द्वितीय दृश्य

स्थान—जालोर में ताज खाँ की अतिथिशाला

[राव सुरताण और भामाशाह बातें करते हुए आते हैं साथ में ताज खाँ भी हैं]

ताज खाँ—शाह जी, यह हमारा सौभाग्य है कि आपने हमारा आतिथ्य स्वीकार किया। पर हमारी दिली ख्वाहिश यह है कि अभी आप कुछ देर और यहाँ ठहरें !

भामाशाह—आप-जैसा आतिथेय भी कब-कब मिलेगा जीवन में। पर अपनी परिस्थितियों के कारण मुझे इस सौभाग्य को छोड़ना पड़ रहा है। मैंने आपको सब-कुछ समझा ही दिया है, हम इन दिनों महान् मुग़ल साम्राज्य से उलझे हुए हैं। आप जैसे कुछेक वीर साथियों के कारण ही हमने यह उत्तरदायित्व अपने कंधों पर लिया है !

सुरताण—हम हृदय से प्रतिक्षण आपके साथ हैं। महाराणा वीर-शिरोमणि हैं उनमें हमारी असीम श्रद्धा है। आपको ज्ञात ही है कि इधर शाही सेना से हमने कितने युद्ध किये हैं।

ताज खाँ—लेकिन महा मुग़ल सल्तनत से अपने इन छोटे-छोटे राज्यों की तुलना ही क्या ?

सुरताण—सिरोही का राज्य दो हिस्सों में है। इस समय शाही सेना-पति ने जीतकर जगमल को हमारे राज्य का कुछ हिस्सा दे दिया है। परिस्थिति के वशीभूत हमें संधि करनी ही पड़ी। (सांस भरकर) हृदय में भीषण ज्वाला सुलग रही है।

ताज खाँ—हृदय के विद्रोही हैं। अवसर मिलने पर हम लोग चूकते नहीं शाह जी ! बादशाह के लिए सिर-दर्द बने हुए हैं हम दोनों !

भामाशाह—जानता हूँ, भली भाँति जानता हूँ। तभी तो राणा का सन्देश लेकर आप लोगों के पास आया हूँ। यही चाहता हूँ कि आप किसी-न-किसी बहाने से मुग़ल सेनाओं को इधर उलझाये रखें।

सुरताण—निश्चिन्त रहिए, ऐसा ही होगा। इधर मालवा में तो आपको काफ़ी सफलता मिली है।

भामाशाह—यह आप ही लोगों की सद्भावना का फल है।

सुरताण—(मुस्कराकर) विनम्रता में कोई भी आपकी समता नहीं कर सकता। प्रताप का प्रताप इसीलिए अक्षुण्ण है कि उनके पास आप-जैसा देश-भक्त वीर और निस्वार्थ भावना वाला महामन्त्री है।

भामाशाह—यह सब आपकी गुण-ग्राहकता है। मैं किस योग्य हूँ। वैसे प्रताप जैसे मानव के पास रहकर ये सब भावनाएँ स्वयं ही व्यक्ति के हृदय में घर कर लेती हैं।

ताज खाँ—जिन्दगी में एक बार महाराणा से मिलने की इच्छा है। उस इन्सान को देखना चाहता हूँ जिसने हमें परेशान करने वाले अकबर को परेशान कर रखा है।

सुरताण—तुम्हारी यह कामना पूरी होगी मित्र ! (सोचते हुए) क्यों शाह जी ! आप राणा उदयसिंह के काल में भी तो मेवाड़ के महामन्त्री थे।

भामाशाह—हाँ, कुछ वर्ष रहा था, किन्तु बाद में इस पद से त्याग-पत्र दे दिया था।

ताज खाँ—क्यों ?

भामाशाह—मुझे उनकी विलास-प्रियता की नीति पसंद नहीं थी।

सुरताण—अब इस पद पर कब से हैं ?

भामाशाह—जब से प्रतापसिंह महाराणा बने। उन्होंने राणा बनते ही मुझे बुला लिया। मेरी देख-रेख में ही उनकी शिक्षा-दीक्षा हुई थी। उनके वीरोचित स्वभाव और सहृदयता से मैं अच्छी तरह परिचित था। ईश्वरीय वरदान के रूप में ही इतने उदार साथी मिलते हैं।

सुरताण—राणा जी से कहियेगा कि हम सदैव उनके साथ हैं। आज बुरे दिन हैं तो क्या हुआ, कल अच्छे भी आयँगे।

भामाशाह—संघर्षशील प्राणी के लिए अच्छे और बुरे का प्रश्न ही नहीं उठता। आप-जैसे मित्रों की शुभकामनाएँ ही हमारे लिए पर्याप्त हैं इधर ईडर के राजा नारायणदास से भी बातचीत हो चुकी है, वह भी हमारे साथ हैं।

सुरताण—वह तो महाराणा के श्वसुर ही हैं।

भामाशाह—पर इन बातों में क्या रखा है राव जी! जब कई बार भाई भाई का साथ नहीं देता तब इन सम्बन्धों को कौन पूछता है ? हमारा साथ वही दे सकता है जिसके हृदय में हमारी ही तरह अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा की आकांक्षा हो। यह चाह मुझे आप लोगों की तरह नारायणदास जी में भी मिली।

सुरताण—उचित बात है, वैसे तपस्वी और साधकों का साथ ईश्वर भी देते हैं। बरबस उनकी ओर हृदय खिंचा चला जाता है। फिर हम तो मानव हैं। मानव के नाते मानव का साथ देते हैं। महाराणा हमारे पथ-प्रदर्शक हैं। हमारे आराध्य हैं।

भामाशाह—जो भी उनसे एक बार मिला है वह तो उन्हें अपने हृदय से नहीं निकाल सकता। चाहे शत्रु हो चाहे मित्र, उस आकर्षक व्यक्ति की प्रशंसा किसी-न-किसी रूप में उसे

करनी ही होगी।

ताज खाँ—(सोचते हुए) तब फिर आपके आतिथ्य का हमें कुछ दिन और अवसर नहीं मिलेगा।

भामाशाह—अब तो जाना ही होगा। महाराणा के पास शीघ्र ही पहुँचना चाहता हूँ। सूचना मिली है कि वहाँ निरन्तर युद्ध हो रहा है। शत्रु अपनी विशाल शक्ति से हमें झुकाना चाहता है, (हंसकर) और प्रताप ने झुकना नहीं सीखा।

सुरताण—प्रताप टूट सकता है लेकिन झुक नहीं सकता। मेवाड़ को मुग़लों से लड़ते हुए कितने ही वर्ष वीत गये।

भामाशाह—राणाओं के वंश में कोई भी राणा ऐसा नहीं हुआ जिसने अपने जीवन-काल में दो-चार प्रबल युद्ध न किये हों। महाराणा साँगा के समय से तो मेवाड़ के सैनिकों को विश्राम के लिए क्षणिक अवकाश भी नहीं मिला। बहादुर-शाह की लड़ाई में तो साका ही मनाया गया था। उदयसिंह के वक्त में जयमल-फत्ता का बलिदान हुआ था। इन निरन्तर के युद्धों में वड़े-वड़े महाबली खोये हैं (सांस भर-कर) और जो कुछ बचे थे उन्हें हल्दीघाटी के स्वतन्त्र यज्ञ में होम कर दिया।

सुरताण—इस पर भी महाराणा का ही साहस है जो मुग़ल साम्राज्य से लोहा लेते हैं।

[एक सेवक का प्रवेश]

सेवक—आलीजाह, वजीर साहिब कहते हैं कि राणा जी को भेंट स्वरूप में जाने वाली वस्तुओं को एक बार आप ही आकर देख लें।

ताज खाँ—कह दो हम आ रहे हैं। (सेवक का प्रस्थान) हमारी यह तुच्छ भेंट राणा जी को देकर हमारा सलाम उन्हें दें।

भामाशाह—साधुवाद !

ताज खाँ—आइये, फिर आप उन चीज़ों को एक बार देख लें !

भामाशाह—चलिए !

[सबका प्रस्थान]

तृतीय दृश्य

स्थान—चावंड में महाराणा के नवनिर्मित भवन का एक भाग।

(चावंड को राणा अपनी नई राजधानी के रूप में सँवार रहे हैं। शिवालय बन चुका है। भवन का काम पूरा होने पर है। किले की नींव भी डाली जा चुकी है। भवन के एक भाग में महाराणा प्रताप और महारानी बातें कर रहे हैं।)

प्रताप—जाओ रानी, मुझे अकेले में बैठकर कुछ सोचने दो !

प्रभामयी—महाराज, आज आपको इस उद्विग्नावस्था में रहते कितने ही दिन हो गए हैं। अब आपको अपना नहीं तो कम-से-कम दूसरों का ध्यान तो रखना ही चाहिए। आपका एक-एक सैनिक आपके स्वास्थ्य के लिए चिन्तित है। युवराज अमर अलग अपने में खोए-से रहते हैं। भीलराज ने ऐसा मौन साधा है कि कुछ कहते ही नहीं बनता। भामाशाह जी कल से आए हुए हैं आपने उनसे बात तक नहीं की। आपकी इस मनोदशा से वह बहुत दुखी हैं।

प्रताप—रानी, हृदय में एक असीम विषाद-सा भर गया है। पत्र लिखने को तो लिख दिया है पर ऐसे लगता है जैसे सोते-जागते, उठते-बैठते हर समय कोई कहता है कि 'प्रताप, तूने बुरा किया ! तुझ पर देवताओं का अभिशाप पड़े।' अनुभव होता है, हवा की लहरियों में घूमती हुई बाप्पा रावल की आत्मा कुद्ध रही हो—'प्रताप तुझ से कदापि यह आशा नहीं थी। तूने मेरे उज्ज्वल नाम पर कलंक का टीका लगाया है।' मेरे सभी पूर्वज रक्त वर्ण नेत्रों से मेरी ओर देख रहे हैं। महाराणा साँगा शरीर के

पृथ्वीराज को हमारी ओर से लिखो !

(कुछ क्षण शान्ति रहती है। अमर मसि, कागज, लेखनी इत्यादि लेकर आते हैं।)

प्रताप—लिखो अमर, हमारी आत्मा का सोया हुआ कवि भी जागा है—

खुशी हूंत पीयल कमध, पटको मूंछां पाण।
पछटण है जेतो पतो कमला सिर केवाण ॥१॥
सांग मुड़ सहसी सको, समजस जहर सवाद।
भड़ पीयल जीतो भलां, वंण तुरक सूं वाद ॥२॥
तुरक कहासी मुख पतो, इह तन सूं इकलिंग।
ऊगै जांही ऊगसी प्राची बीच पतंग ॥३॥

(सोचते हुए) बस, अब इससे अधिक और कुछ नहीं। जाओ भीलराज को बुलाकर लाओ, और दूत को भी। जब तक पृथ्वीराज का पत्र मुझे दो मैं स्वयं इसे पढ़ता हूँ ! (अमर जाते हैं। राणा पत्र पढ़ते हैं) सुनो महारानी ! अकबर को उन्होंने यह कहा कि यह पत्र ही राणा का नहीं है ! अकबर असमंजस में पड़ गया ! धन्य हो पृथ्वीराज तुम धन्य हो ! तुम्हारे इस पत्र ने हम में नव-जीवन का संचार किया है।

मेघाजी—(आते हुए) आपने मुझे बुलाया है राणाजी !

प्रताप—लो भीलराज ! यह प्रसाद ग्रहण करो (अमर से) अमर, सब सैनिकों में इसे बाँट दो ! लो महारानी स्वयं भी लो और बच्चों में भी बाँटो (सांस भरकर) ओह ! ये बच्चे भी मानव के जीवन की कैसी विचित्र दुर्बलता हैं। इनके आँसू हमें पतन के गहरे गढ़े में गिराने जा रहे थे। सदा के लिए हमारा नाम इतिहास में कलंकित हो जाता। आने वाली पीढ़ियाँ हमें अपना पूर्वज कहते हुए भी लज्जा का

अनुभव करतीं।

प्रभामयी—राजन्! मानव और दुर्बलता का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है!

प्रताप—हम इस कटु सत्य से इन्कार तो नहीं करते। (क्षणिक आवेश में) भीलराज! आप लोगों ने इन दिनों हमारे मानव की दुर्बलता देखी है। अब हम आपको उसकी दृढ़ता का प्रमाण देंगे।

मेघाजी—आपके मानव की दृढ़ता से हम परिचित हैं देव!

[भामाशाह का प्रवेश]

प्रताप—अच्छा हुआ आप आ गए। हम आपकी ओर ही आने वाले थे! क्या मैं आशा करूँ कि आपने हमारी कल की उपेक्षा को क्षमा कर दिया होगा!

भामाशाह—वह उपेक्षा नहीं थी महाराणा! वह तो आपने अपने विषाद का भाग हमें नहीं देना चाहा! आप अपने ही में मौन थे।

प्रताप—आपने भगवान् का प्रसाद ग्रहण किया शाहजी!

भामाशाह—युवराज ने प्रसाद भी दिया, और इसके आने का आदेश भी, साथ ही महाकवि पृथ्वीराज के पत्र का संवाद भी सुनाया।

प्रताप—पत्र की कुछ ही पंक्तियों से विषाद की समस्त कालिमा धुल गई! जीवन की इस सघन अमावस में ज्योतिर्मय मशाल का काम दिया इस पत्र ने।

प्रभामयी—मुझे कुछ क्षणों के लिए अवकाश मिले स्वामी!

प्रताप—क्यों, क्या तुम हमारे दुखमय क्षणों की ही संगिनी हो, सुखमय क्षणों की नहीं।

प्रभामयी—जिन बच्चों के कारण आप इतने दुखी रहे हैं। अपने दुखी क्षणों का आपको अनुभव नहीं हुआ, किन्तु मुझे

अनुमान है कि बच्चे आपके दुख से कितने दुखी रहे हैं। माता-पिता के होते हुए भी अनाथों की तरह स्नेह-प्यार से वंचित। केवल भीलराज का ममत्व ही उनका रक्षक रहा।

प्रताप—(कृतज्ञता से) उनके ही नहीं। भीलराज तो सदैव ही हम सभी के रक्षक रहे हैं। इन दिनों तो और भी बोझ आ पड़ा था इन पर। बच्चों की देख-भाल करना, मुझे धैर्य बँधाना, साथ ही शत्रुओं पर आक्रमण करके खाद्य-सामग्री इत्यादि लाना। (रुककर) सचमुच भीलराज ! स्रष्टा के अद्भुत वरदान की तरह तुम हमारे साथ हो ! (अमर का दूत के साथ आना) आओ दूत ! आओ ! तुम्हारा पथ तो मंगलमय रहा !

किरण—आपके अशीर्वाद से कोई कष्ट नहीं हुआ है।

प्रताप—महाराज पृथ्वीराज तो प्रसन्न हैं !

किरण—आपके पत्र के बाद उनके पास प्रसन्नता रह ही कहाँ सकती थी ?

प्रताप—हुँ ! इसका अर्थ यह है कि तुम उनके अन्तरङ्ग हो !

किरण—अत्यधिक विश्वस्त !

प्रभामयी—हमारी किरण तो प्रसन्न है ? बहुत वर्ष हो गए उसे देखे।

प्रताप—(सांस भरकर) वह कैसे प्रसन्न हो सकती है ? कविवर ने उसे यह समाचार अवश्य सुनाया होगा। सुनते ही उसके उन्माद की सीमा नहीं रही होगी। उसे अपने वंश पर गर्व है। उस दिन उसे अपनी हीनता का अनुभव हुआ होगा ! (कुछ क्षण बाद) बड़ी ही स्वाभिमानिनी लड़की है। अब तो बड़ी हो गई होगी। आठ-दस वर्ष से उसे नहीं देखा।

प्रभामयी—शक्तिसिंह के मेवाड़ छोड़कर जाने के बाद से ही हमें नहीं मिली ! इतना समय तो हो ही गया होगा। तब से अपने मामा के यहाँ ही रही। विवाह भी तो सम्भवतः ………

प्रताप—उन्होंने ही किया था ! हमें भी निमंत्रण भेजा था, किन्तु संघर्षों में फँसे होने के कारण हम लोग भी जा न सके थे !

किरण—अब तो दीवान जी ! आप सम्भवतः उसे पहचान भी न सकें।

प्रताप—नहीं, यह बात तो नहीं। अपने हाथों से पाले हुए बच्चे को कौन नहीं पहचान पाता ! अलग बात है उनके बड़ा हो जाने पर आँखें न पहचानें, किन्तु हृदय में अपने-आप ममता उमड़ आती है। बचपन से मेरे ही पास रही है। मुझे दूर से ही आता देखकर 'ताऊजी, ताऊजी', कहकर लिपट जाती थी ! शैशव भी कितना निष्कपट और निस्पृह होता है।

किरण—राणा जी ! क्या मुझे देखकर भी आपके हृदय में ममता उमड़ी है ?

प्रताप—जब से तुम आये हो हृदय तुम्हें पहचानने की चेष्टा कर रहा है। आभास होता है कि मैंने तुम्हें कहीं देखा है, पर कहाँ देखा है यह समझ में नहीं आ रहा।

किरण—मैं भी आपकी गोद में पला हूँ। सदैव आपके स्नेह की शीतल छाया मुझ पर रही है, और जीवन भर रहेगी।

प्रताप - इतना विश्वास है तुम्हें मेरे प्रति !

किरण—आप ही पहचानिये रानी जी ! आप से भी मुझे उतना ही स्नेह मिला है जितना कि राणा जी से !

प्रभामयी—(मुस्कराकर) मैं तो तुम्हें देखते ही पहचान चुकी हूँ।

किरण—(हँसती हुई) इस पत्र को तो हवा भी नहीं लगने दी हमने। इसे खड्ग की पोली मूठ में बन्द करवाकर लाया गया है। वह तो पत्र ही दूसरा था, जिसे रास्ते भर दिखलाते आए हैं। उस पत्र में तो बादशाह से सन्धि करने पर आपकी सराहना की गई है और आपको बधाई दी गई है। पहले उसे बादशाह ने पढ़ा तब फिर राव महीपाल को दिया गया।

प्रताप—राव महीपाल कौन ?

किरण—वास्तविक दूत ! वैसे मेरे अंग-रक्षक (हँसकर) किन्तु सारे रास्ते मैं उनका अंग-रक्षक बनकर आई हूँ, वृद्ध हैं, पर हैं बड़े ही वीर, बहुत ही नीति-कुशल। साथ में उनकी पुत्री, मेरी सखी जयदेवी भी इसी छद्म वेश में आई हैं।

प्रताप—इस समय कहाँ हैं ये सब व्यक्ति !

किरण—सब मिलकर हम आठ व्यक्ति आए हैं। इस समय सभी की आकांक्षा आपके दर्शनों की थी ! पर युवराज ने उन्हें......

अमर—मैंने कहा—'पिताजी आप से अभी भेंट करेंगे पर पहले आप कुछ देर विश्राम कर लें तो अच्छा रहे।'

प्रताप—जाओ, उन्हें सादर ले आओ !

किरण—अब तो वह अफीम खाकर मस्त हो गए होंगे ! अफीम बहुत खाते हैं।

प्रताप—(हँसकर) तब तो सही अर्थों में राजपूत हैं। प्रभामयी इस वीरवर किरणसिंह को अपने साथ ले जाओ और इसे किरणमयी के रूप में हमारे सामने लाओ ! जयदेवी को भी अपने साथ ले लेना।

प्रभामयी—आइये किरणसिंह जी !

अतुल शक्ति है।-फिर साक्षात् महाकाल के समान आप हमारे साथ हैं स्वामी !

प्रताप—(हुंकारकर) ऐसा ही होगा ! शीघ्र ही शत्रुओं से अपने वीरों की मृत्यु का प्रतिशोध लिया जायगा ! आँधी और तूफान की तरह शत्रुओं पर छा जाना होगा ! मैं अपनी प्रतिज्ञा भूला नहीं हूँ शाह जी ! जब तक सारा मेवाड़ स्वतन्त्र नहीं होता तब तक मेरी आत्मा को शान्ति नहीं मिल सकती।

मेघाजी—आपकी प्रतिज्ञा पूरी होगी और शीघ्र ही पूरी होगी।

प्रताप—(सोचते हुए) सैनिकों का अभाव कैसे पूरा किया जाय ?

मेघाजी—मेवाड़ का प्रत्येक प्राणी आपके इंगित पर प्राण दे सकता है।

भामाशाह—वर्षों से हम लोग जो बात सोचते आ रहे हैं उसे अब क्रियान्वित किया जाय !

प्रताप—कौन सी बात !

भामाशाह— भीलों को राजपूतों की तरह युद्ध करने की शिक्षा दी जाय। शस्त्रास्त्रों के नवीन कारखाने खोले जायँ ! और अपने अधीन जो इलाके हैं उनमें खेती-बाड़ी भी की जाय !

प्रताप—कल्पना तो सुन्दर है। किन्तु आपने कभी यह भी सोचा है कि मेवाड़ के कोष में इतना धन कहाँ है ?

भामाशाह—धन की आप चिन्ता न करें स्वामी ! महाराणा कुम्भा और महाबली राणा साँगा की कृपा से मेवाड़ के कोष में अतुल धन है।

प्रताप—था ! है नहीं ! पिताजी ने पर्याप्त सम्पत्ति उदयपुर के निर्माण में लगवाई थी। उससे पहले मेवाड़ ने बहादुर-शाह की लूट देखी है !

भामाशाह—मेवाड़ ने बहुत संघर्ष देखा है महाराणा, और उसे

[महाराणा कुछ देर गम्भीर रहकर सोचते हैं]

भामाशाह—(आग्रह से) देव! मेरी इस विनम्र प्रार्थना को ठुकराइये नहीं! मुझे निराश न कीजिये! कहिए कि मुझे स्वीकार है! (राणा फिर भी मौन हैं)

मेघाजी—दीवाण जी! शाहजी की बात मान लीजिए। समय आने पर आप जितना चाहें फिर दे सकते हैं।

भामाशाह—आपकी अनुकम्पा चाहिए देव, कृपा कीजिए मुझ पर। दुख होने की इसमें क्या बात है। मैं तो सदैव आपका सेवक हूँ।

प्रताप—त्यागी भामाशाह! राष्ट्र के वयोवृद्ध नेता! आपका उदाहरण भी विश्व के इतिहास में नहीं मिलेगा। आपकी आज्ञा मुझे मान्य है। आशीष दो कि मैं मेवाड़ का पूर्ण-रूपेण उद्धार कर सकूँ!

भामाशाह—वह तो सदैव आपके साथ है राणा जी!

[तभी शक्तिसिंह का प्रवेश]

शक्तिसिंह—भैया!

प्रताप—कौन शक्ता! आ मेरे वक्ष से लग जा। मेरे उल्लास का इस समय कोई ठिकाना नहीं है। (दोनों एक दूसरे के गले मिलते हैं) अच्छे अवसर पर आया! तेरी इस समय बड़ी ही आवश्यकता थी।

शक्तिसिंह—आवश्यकता के समय मैं कभी भी पीछे नहीं रहा भैया! वैसे चाहे उन्मादियों की तरह ऐंठा रहूँ।

प्रताप—जानता हूँ। भली भाँति जानता हूँ। तू सुख में साथ दे या न दे, दुख का साथी अवश्य है।

भामाशाह—कहो प्रसन्न तो रहे कुमार!

शक्तिसिंह—आपके आशीर्वाद के होते हमें चिन्ता नहीं हो सकती शाह जी!

इससे अधिक और कुछ नहीं चाहिए।

प्रताप—अरे हठीले ! मेरी बात मान, चल मेरे साथ ! उल्लास
खिल न उठे तो मुझे कहना।

शक्तिसिंह—आपने कभी इतना आग्रह नहीं किया भैया ! आ
ऐसी कौन सी समस्या है जो आपको व्याकुल किये हुए
कौन सी पहेली है जो आप से नहीं सुलझ रही। मुझ ह
को आपके स्नेह के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहि
मेवाड़ पूर्णरूपेण स्वतन्त्र हो ले। तब आपसे एक स
ही अनेकों उपहार लूँगा (गला रूँध जाता है) मैं देशद्रो
अपने पापों का पश्चात्ताप कर लूँ तब आपका उपहार ग्र
करने के योग्य बन सकूँगा।

[शक्ति चरणों पर झुकता है, प्रताप उठाकर वक्ष से लगाते हैं

प्रताप—(स्वर भर आता है) अधिक न बोल, शान्त रह ! तू अ
उन्माद में चाहे कोई भूल कर जाय पर तेरी आ
महान् है, जो तुझे अपने पथ से विचलित नहीं होने दे
(भीलराज से) भीलराज ! महारानी अभी पथ में हों
उन सब को लौटा लाओ !

[भीलराज जाते हैं]

भामाशाह—कुँवर जी ! कौन अभागा आपको देशद्रोही कहे
आपने दो बार मेवाड़ के प्राणों की रक्षा की। अब
उनमें नव-चेतना भर रहे हैं। मेवाड़ सदैव आ
आभारी रहेगा। इतिहास में आपका नाम स्वर्णाक्ष
लिखा जायगा।

शक्तिसिंह—(फीकी हँसी) हाँ ! वह तो लिखा ही जायगा
लोग पढ़कर मुझ से घृणा कर सकें।

प्रताप—शक्ता, उन्मादी तो नहीं हो गया तू ! अकबर के द
को क्रीड़ा-स्थल के अतिरिक्त तूने कुछ नहीं माना। तू स

[किरण शक्तिसिंह से लिपट जाती है]

किरण—पिता, पिता जी !

शक्तिसिंह—(चौंककर) कौन किरण, किरण मेरी बेटी ! तू यहाँ कैसे !

प्रताप—बहुत बड़ा रहस्य है ! बहुत लम्बी कहानी है।

शक्तिसिंह—क्या वह रहस्य मेरे लिए भी रहस्य ही रहेगा !

प्रताप—नहीं, तुझ से जीवन का कोई रहस्य छिपा नहीं रखूँगा। पहले पिता-पुत्री अपनी कहानी कह-सुन लो फिर मैं भी अपनी कहानी कहूँगा। (भामाशाह से) शाहजी ! महीपाल जी के प्रस्थान का प्रबन्ध होगा। किन्तु किरण अभी यहाँ कुछ दिन रहेगी। हम महाराज पृथ्वीराज को लिख देंगे। आओ, अब अतिथियों से चलकर मिलें ! आज का दिन इतना सुखद रहा, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

[सबका प्रस्थान]

[पटाक्षेप]

तृतीय अंक

प्रथम दृश्य

स्थान—शेरपुरा में मुग़ल सेनापति अब्दुल रहीम-
ख़ानख़ाना का भवन।

[शाहबाज़ख़ां के बाद बादशाह ने उसे मेवाड़-युद्ध का प्रधान सेनापति नियुक्त किया है। वह कवि और सेनापति के नाते शेरपुरा में सैर और महाराणा प्रताप पर दृष्टि रखने के उद्देश्य से ठहरा हुआ है। साथ में उसका परिवार भी है।

नेपथ्य से हल्की-हल्की संगीत और नृत्य की ध्वनि आ रही है। अनुभव होता है कि सैनिक-शिविर में आनन्द मनाया जा रहा है।

इधर रहीम मसनद के सहारे बैठे हैं, साथ में परिवार की औरतें भी हैं! नर्तकी नृत्य कर रही है। नृत्य के उपरान्त सिर झुकाकर प्रणाम करती है।]

['वाह-वाह खूब' इत्यादि की आवाजें]

जीनत बेगम—सुभान अल्लाह, तबियत खुश कर दी।

रहीम—(गले से उतारकर मोतियों का हार देते हैं) यह लो! यह तुम्हारा इनाम है। वास्तव में ही तुम नृत्य-कला-प्रवीण हो! क्यों क्या तुम गाना भी जानती हो?

नर्तकी—(विनम्रता से) यदि आज्ञा हो तो कुछ सुनाऊँ!

रहीम—अवश्य!

[नर्तकी गीत गाती है]

गीत

मधु पीने की चाह नहीं है जीवन में।
अब जीने की चाह नहीं है जीवन में॥

× × ×

अगर मिले विष हँसते-हँसते पी जाऊँ,
विष पीने के बाद मधुर स्वर से गाऊँ,
पिंजरे में कोयल क्या गीत सुनायेगी—
गीत छोड़ आई जो अपने मधुवन में।
अब जीने की चाह नहीं है जीवन में॥१॥

× × ×

इच्छा नहीं किसी से मन की बात कहूँ,
जीवित शव बनकर जीवन भर मौन रहूँ,
एक दिवस जब मृत्यु सहचरी आयेगी—
शांति मिलेगी बँध उसके भुज-बन्धन में।
मधु पीने की चाह नहीं है जीवन में॥२॥

[गीत बन्द होता है, बेगम इत्यादि बैठी हुई औरतें 'वाह-वाह सुभान अल्लाह' की आवाजें देती हैं, पर रहीम उदास हो जाते हैं]

जीनत—सुभान अल्लाह! क्या गला पाया है। कोई हर्ज नहीं अगर एक गीत और हो जाय तो!

रहीम—(डांटकर) चुप रहो! गीत की कोई जरूरत नहीं। (सांस भरकर) कितना विषाद है इसके अन्तर में! कितनी पीड़ा है! क्या नाम है तुम्हारा?

नर्तकी—(कुछ श्वास लेकर) कभी था नाम! अब कोई नाम नहीं है। जिसकी जो इच्छा होती है उसी नाम से बुला लेता है। आपको भी यदि कोई नाम सूझ रहा हो तो उसी नाम से बुला लीजिए!

रहीम—हुँ! फिर भी कौन हो तुम?

नर्तकी—शाही लूट में लूटा हुआ एक चलता-फिरता पदार्थ हूँ। मेवाड़ पर हुए शाहबाज़ख़ाँ के अत्याचारों का एक ज्वलंत उदाहरण हूँ। मानव के पतन की चरम सीमा हूँ।

रहीम—मानव! उन्हें मानव मत कहो बहन! उन्हें मानव मत कहो। वे लोग मानव के वेश में दानव हैं, जो नारी का भी सम्मान करना नहीं जानते। (आवेश में) वे वीर नहीं वीरता के नाम पर कलंक हैं। जो प्रबल शत्रु से प्रतिशोध न चुका सकने पर उसकी निरीह जनता से अपना प्रति-शोध चुकाते हैं। (सोचते हुए) अब समझा शाहबाज़ख़ाँ अब समझा! तुमने अपने सहायक राजा मानसिंह को वापिस बुलाने के लिए बादशाह को क्यों लिखा था! क्योंकि उनके होते हुए तुम्हारी यह कुत्सित कामनाएँ पूरी नहीं हो सकती थीं। (उदासी से) तुम मेरे पथ में काफी मात्रा में काँटे बिछा रहे हो। बहन! अपने हृदय की व्यथा कुछ कम कर लो। मुझ पर विश्वास करो। मुझे अपने दुःखों का साथी समझो! अपनी गाथा सुनाओ!

जीनत—बहन! हम तुम्हारे हैं। तुम हम पर विश्वास करो। तुम समझो कि तुम अपने भाई के पास हो। (प्यार से) क्या नाम है तुम्हारा!

नर्तकी—चपला! (तत्पश्चात् रो पड़ती है) मेरा अहोभाग्य! वर्षों बाद आज किसी ने फिर भाई कहने का अधिकार तो दिया। इस अधिकार को नहीं खोऊँगी! भैया!

रहीम—बहन! दुखी न हो मुझ से अपनी दुःखभरी कहानी कह! सुना अपने आकुल हृदय का क्रन्दन!

जीनत—यदि तुम चाहो तो अपने घर भी जा सकती हो।

चपला—(पागलों की तरह हँसती है) घर! मेरा घर अब कहाँ है इस जीवन में! मुगल सेनाओं ने वह पूरे-का-पूरा गाँव

ही उजाड़ डाला था। मेरा सारा परिवार अपनी रक्षा करते हुए मारा गया। नारियाँ घरों और झोंपड़ियों में आग लगाकर जल मरीं। मैं कटार से आत्म-हत्या करने ही वाली थी कि बन्दी बना ली गई। और उसके बाद · ···

जीनत—कहो-कहो रुक क्यों गई, उसके बाद क्या हुआ ?

चपला—उसके बाद······(दोनों हाथों से मुख ढककर रोने लगती है) इसी कामना से जीवित हूँ कि उनसे अपना प्रतिशोध लूँ। (सिसकियाँ भरती है)

रहीम—मैंने तुझे बहन कहा है। चुप हो जा, मुझ पर विश्वास कर ! मैं उन पामरों को कड़ा दण्ड दूँगा ! जीनत बेगम इसे अपने साथ भीतर ले जाओ ! तुम सब जाओ ! मैं कुछ क्षण एकान्त चाहता हूँ।

[सब जाती हैं रहीम क्रोध से इधर-उधर घूमते हैं। हाथ तलवार की मूठ पर आ जाता है]

रहीम—ओह ! यह तो मनुष्य के पतन की चरम सीमा है। मेरा कवि-हृदय इसे सहन नहीं कर सकता ! (ऊँचे स्वर में) अमीरख़ाँ !

[आवाज सुनते ही एक द्वारपाल आता है]

अमीरख़ाँ—हुजूर आली !

रहीम—सब छोटे-बड़े सिपहसालारों से कहो कि हम इसी वक्त उन्हें याद कर रहे हैं।

अमीरख़ाँ—जो हुक्म परवरदिगार ! लेकिन इस वक्त वे सब शराब के नशे में चूर होंगे ! आज जश्न की रात मनाई जा रही है।

रहीम—अच्छा तुम जाओ !

[तभी नेपथ्य में शोर मचता है। घोड़ों की टापों की

आवाज। 'दुश्मन आ गया' 'भागो, बचो, मारो' इत्यादि का शोर]

रहीम—यह शोर कैसा है? दीखता है शत्रु ने हम पर हमला कर दिया है/और मनाओ, जश्न की रात ! (अपनी तलवार खींच लेते हैं) अमीरखाँ महल के पहरेदारों से कहो होशियार रहें !

[अमीरखाँ एक तरफ जाता है, तभी उसकी चीख सुनाई देती है। कुछ देर बाद हाथ में तलवार लिये युवराज अमर का प्रवेश]

अमर—सँभलो सेनापति, तुम्हारा काल आ पहुँचा !

रहीम—यह तो समय बतायगा कि कौन किसका काल है। किन्तु वीरता की डींग मारने वालो यही है तुम्हारी वीरता कि असावधान शत्रु पर आक्रमण कर दो !

अमर—(अट्टहास) तुम्हारी युद्ध-कला का प्रयोग तुम्हीं पर करने आया हूँ सेनापति, इसमें क्रोधित होने की कौन सी बात है? यह सब-कुछ आप ही लोगों से हमने सीखा है। (हंसकर) आज गुरु-दक्षिणा देने आया हूँ तो आप घबरा गए। आओ शीघ्र ही दो-दो हाथ कर लें, मेरे पास अधिक समय नहीं है।

[दोनों एक दूसरे पर टूट पड़ते हैं और युद्ध करते हुए रंगमंच से दूर हो जाते हैं। नेपथ्य से पूर्ववत् आवाजें आ रही हैं।]

शक्तिसिंह—(हँसकर) उन्मादी! उन्मादी तो मैं जीवन के प्रारम्भिक विकास से ही हूँ भैया! उन्मादी न होता तो क्या मैं पाँच वर्ष की अवस्था में ही तलवार की तेज धार परखने के लिए अपनी अँगुली काट लेता? मेवाड़ के लिए अहितकर समझा जाकर उस अवस्था में पिता के द्वारा निर्वासित होता?

प्रताप—इन बातों के स्मरण से क्या लाभ शक्ता!

शक्तिसिंह—(अनसुनी करके) हृदय के भावावेश का नाम ही तो उन्माद है! वही उन्माद, जो आज तक भी देशद्रोही कहे जाने पर मुझ से अपने राष्ट्र का अहित न करवा सका। जय हो मेवाड़ की!

प्रताप—कितनी दूर तक छोड़ आये किरण को!

शक्तिसिंह—अब वह बीकानेर पहुँचने ही वाली होगी।

प्रताप—बीकानेर!

शक्तिसिंह—हाँ, पथ में ही हमें ज्ञात हुआ कि पृथ्वीराज आजकल बीकानेर आए हुए हैं। तब उसने बीकानेर ही जाना उचित समझा। (हँसते हैं) उस वेश में उसे कोई भी पहचान नहीं सकता, वास्तव में ही युवक लगती है। (रुककर) अब मुझे क्या आज्ञा है?

प्रताप—हमने अपने मित्र राजाओं के पास दूत भेजे हैं। वैसे अभी तक कहीं से कोई उत्तर नहीं मिला।

शक्ति—बस आज या कल में आने वाले होंगे। पथ में मुझे ज्ञात हुआ था कि सालुम्बा-नरेश यहाँ के लिए चल दिए हैं।

प्रताप—वैसे मैंने इधर नूतन सैनिकों को पर्याप्त शिक्षित कर लिया है। मेरा विचार है कि साथियों के आगमन से पूर्व एक-दो किलों पर हम और अधिकार कर लें। यहाँ की देखभाल और अतिथियों का स्वागत शाहजी कर लेंगे।

शक्तिसिंह—निश्चित ! मैं प्रस्तुत हूँ। कुम्भलगढ़ और गोगुन्दा पर एक साथ ही आक्रमण किया जाय।

प्रताप—ठीक है शाह जी ! एक-दो दिन में ही हमें प्रस्थान करना है, प्रबन्ध हो जाना चाहिए ! अमर आपके साथ यहीं रहेगा। आने पर उसे और कहीं न जाने दिया जाय !

भामाशाह—जो आज्ञा !

प्रताप—जिन-जिनके पास सन्देश भेजा है यदि वे सभी आ गए तो एक बार अकबर को दिखा दूँगा कि तुम्हारा भी वास्ता किससे पड़ा है।

शक्तिसिंह—इस बात को तो अकबर अब भी जानता है। सारे देश में इस बात की चर्चा है। मैंने इन कुछेक वर्षों में छद्म वेश में समस्त राजस्थान की यात्रा की है। जोधपुर में रावत चन्द्रसेन का अतिथि भी रहा।

प्रताप—वे स्वयं अकबर के लिए एक आफत बने हुए हैं।

भामाशाह—दीवान जी, आपके राज्याभिषेक के अवसर पर चन्द्रसेन के आगमन से एक बार तो समस्त राजस्थान आश्चर्य-चकित रह गया था। उनके और आपके पिता की शत्रुता जग-विदित रही है। धन्य हैं आप ! उस वंशानुगत शत्रुता पर आपने अपने विशाल हृदय के द्वारा विजय पाई।

प्रताप—राजपूतों को इस मिथ्याभिमान ने ही मिटा रखा है शाह जी ! इनमें कृत्रिमता की मात्रा बहुत अधिक बढ़ गई है। मैं इन सब व्यर्थ के बन्धनों को तोड़ देना चाहता हूँ। मैंने वंश-परम्परा से चली आती अपनी शत्रुता तो सबसे मिटा ही दी है। पर यह भी चाहता हूँ कि दूसरे सहयोगी भी इन छोटी-छोटी बातों के लिए आपस में न उलझें। देश की उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि हम सब लोग

अपने भेद-भावों को भुलाकर एक हो जायँ। हमें अकबर के विरुद्ध सबल संगठन करने की परम आवश्यकता है।

शक्तिसिंह—ऐसा ही होगा भैया! आप जो भी चाहेंगे वही होगा। आपके शत्रु हों चाहे मित्र, सबकी आप में असीम श्रद्धा है। ऊपर से चाहे कुछ भी कहें लेकिन हृदय से सभी आपका आदर करते हैं। और तो और, स्वयं अकबर तक भी। चाहे चोरी-छिपे ही कहें। आपको लोग रहस्यमय देवता समझते हैं।

प्रताप—(टोककर) मुझे इन व्यर्थ की प्रशंसाओं से कुछ नहीं लेना शक्ता! मुझे जीवन के इन संघर्षों से ही कुछ प्राप्त करना है। आपदाओं को देखते ही अब मेरे अधरों पर स्वभावतः मुस्कान आ जाती है। मैं मानव हूँ और मानव ही बनकर जीना चाहता हूँ। इससे अधिक कुछ नहीं। देवत्व की मुझे तनिक भी आकांक्षा नहीं है। मैं क्या हूँ इस बात को अच्छी तरह जानता हूँ। (साँस भरकर) मेरे जीवन का उद्देश्य एक ही है मेवाड़ को स्वतन्त्र कराना, और उसके लिए मैं प्रतिक्षण प्रयत्नशील हूँ।

भामाशाह—देव, आपका उद्देश्य महान् है। अब उसके पूर्ण होने का समय आ गया है।

[तभी युवराज अमर का प्रवेश]

अमर—महाराणा की जय हो!

प्रताप—आओ, युवराज आओ! हम अभी सोच ही रहे थे कि तुमने अब की बार अधिक देर करदी। कुछ सफलता मिली?

अमर—आपके आशीर्वाद से पर्याप्त मात्रा में सफलता मिली। वे लोग शराब के नशे में चूर थे। हमने तभी उन पर आक्रमण कर दिया। वे लोग हमारे इस आकस्मिक आक्रमण को रोक न पाए।

शक्तिसिंह—बहुत सुन्दर ! हर्ष की बात है कि हम लोगों का पहला कार्यक्रम उत्तम रहा है। क्या कुछ लाये हो वहाँ से !

अमर—अभी लीजिए उपस्थित किये देता हूँ। (बाहर की ओर जाकर ऊँची आवाज देते हैं) रणधीरसिंह ! सब वस्तुएँ यहाँ उपस्थित करो। अब की बार मैंने वह काम किया है राणाजी जिसे मुगल सेनापति जीवन भर याद रखेगा।

[इतने में सैनिक बहुत से अस्त्र-शस्त्र मणि-रत्न लेकर आते हैं। साथ में कुछ बन्दिनी नारियाँ भी हैं जिनमें जीनत और चपला दोनों हैं।]

प्रताप—(आश्चर्य से) अमरसिंह ! यह सब क्या है ?

अमरसिंह—मुगल सेनापति के परिवार की नारियाँ ! मैं आती बार इन्हें भी बन्दी बना लाया।

प्रताप—(क्रोध से) अमर ! तुम्हारा मस्तिष्क तो ठीक था उस समय। नारी को बन्दी बनाते हुए तुम्हें लाज तो नहीं आई। (आवेश उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है) मेवाड़ के अक्षय यश पर तुमने कलंक का टीका लगा दिया अमर ! (शक्तिसिंह से) शक्ता प्रभामयी को बुलाकर लाओ। और शाह जी आप कुछ शिविकाएँ यात्रा के लिए तैयार करवायँ।

[भामाशाह और शक्तिसिंह दोनों जाते हैं और प्रताप अविचलित भाव से खड़े हैं]

प्रताप—मैं पूछता हूँ, उस समय तुम्हारे विवेक को क्या हो गया था ! (अमर चुप रहता है) बोलते क्यों नहीं ! मौन क्यों हो शीघ्र उत्तर दो हमारी बात का ! हमारे धैर्य की सीमा मिटी जा रही है ! (विषाद से) हमें तुमसे ऐसी आशा नहीं थी अमर ! तुमने बहुत बुरा किया।

अमर—मैंने अच्छा किया या बुरा राणा जी ! इस पर मैंने न तब सोचा था न अब। जो कुछ हुआ आक्रमण के बाद लौटने

अपने भेद-भावों को भुलाकर एक हो जायँ। हमें अकबर के विरुद्ध सबल संगठन करने की परम आवश्यकता है।

शक्तिसिंह—ऐसा ही होगा भैया ! आप जो भी चाहेंगे वही होगा। आपके शत्रु हों चाहे मित्र, सबकी आप में असीम श्रद्धा है। ऊपर से चाहे कुछ भी कहें लेकिन हृदय से सभी आपका आदर करते हैं। और तो और, स्वयं अकबर तक भी। चाहे चोरी-छिपे ही कहें। आपको लोग रहस्यमय देवता समझते हैं।

प्रताप—(टोककर) मुझे इन व्यर्थ की प्रशंसाओं से कुछ नहीं लेना शक्ता ! मुझे जीवन के इन संघर्षों से ही कुछ प्राप्त करना है। आपदाओं को देखते ही अब मेरे अधरों पर स्वभावतः मुस्कान आ जाती है। मैं मानव हूँ और मानव ही बनकर जीना चाहता हूँ। इससे अधिक कुछ नहीं। देवत्व की मुझे तनिक भी आकांक्षा नहीं है। मैं क्या हूँ इस बात को अच्छी तरह जानता हूँ। (सांस भरकर) मेरे जीवन का उद्देश्य एक ही है मेवाड़ को स्वतन्त्र कराना, और उसके लिए मैं प्रतिक्षण प्रयत्नशील हूँ।

भामाशाह—देव, आपका उद्देश्य महान् है। अब उसके पूर्ण होने का समय आ गया है।

[तभी युवराज अमर का प्रवेश]

अमर—महाराणा की जय हो !

प्रताप—आओ, युवराज आओ ! हम अभी सोच ही रहे थे कि तुमने अब की बार अधिक देर करदी। कुछ सफलता मिली ?

अमर—आपके आशीर्वाद से पर्याप्त मात्रा में सफलता मिली। वे लोग शराब के नशे में चूर थे। हमने तभी उन पर आक्रमण कर दिया। वे लोग हमारे इस आकस्मिक आक्रमण को रोक न पाए।

शक्तिसिंह—बहुत सुन्दर ! हर्ष की बात है कि हम लोगों का पहला कार्यक्रम उत्तम रहा है। क्या कुछ लाये हो वहाँ से !

अमर—अभी लीजिए उपस्थित किये देता हूँ। (बाहर की ओर जाकर ऊँची आवाज देते हैं) रणवीरसिंह ! सब वस्तुएँ यहाँ उपस्थित करो। अब की बार मैंने वह काम किया है राणाजी जिसे मुगल सेनापति जीवन भर याद रखेगा।

[इतने में सैनिक बहुत से अस्त्र-शस्त्र मणि-रत्न लेकर आते हैं। साथ में कुछ बन्दिनी नारियाँ भी हैं जिनमें जीनत और चपला दोनों हैं।]

प्रताप—(आश्चर्य से) अमरसिंह ! यह सब क्या है ?

अमरसिंह—मुगल सेनापति के परिवार की नारियाँ ! मैं आती बार इन्हें भी बन्दी बना लाया।

प्रताप—(क्रोध से) अमर ! तुम्हारा मस्तिष्क तो ठीक था उस समय। नारी को बन्दी बनाते हुए तुम्हें लाज तो नहीं आई। (आवेश उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है) मेवाड़ के अक्षय यश पर तुमने कलंक का टीका लगा दिया अमर ! (शक्तिसिंह से) शक्ता प्रभामयी को बुलाकर लाओ। और शाह जी आप कुछ शिविकाएँ यात्रा के लिए तैयार करवायें।

[भामाशाह और शक्तिसिंह दोनों जाते हैं और प्रताप अविचलित भाव से खड़े हैं]

प्रताप—मैं पूछता हूँ, उस समय तुम्हारे विवेक को क्या हो गया था ! (अमर चुप रहता है) बोलते क्यों नहीं ! मौन क्यों हो शीघ्र उत्तर दो हमारी बात का ! हमारे धैर्य की सीमा मिटी जा रही है ! (विषाद से) हमें तुमसे ऐसी आशा नहीं थी अमर ! तुमने बहुत बुरा किया।

अमर—मैंने अच्छा किया या बुरा राणा जी ! इस पर मैंने न तब सोचा था न अब। जो कुछ हुआ आक्रमण के बाद लौटने

की शीघ्रता में हुआ। और वह इसलिए हुआ कि मैं शत्रुओं को एक पाठ पढ़ाना चाहता था। मैं उस विशाल साम्राज्य के बर्बर शासकों को बताना चाहता था जो अभिमान के बाद में सदैव नारी का अपमान करते हैं। हमारी अनेकों माँ-बहिनों का अपमान जिनके हाथों हुआ है, अनेकों सती-साध्वियों का सतीत्व जिन्होंने नष्ट किया है, मैं उन निर्लज्ज दानवों को एक सबक देना चाहता था कि इसी तरह कभी तुम्हारी माँ-बहनों का अपमान भी हो सकता है। तब तुम्हारी भी आत्मा को इसी तरह पीड़ा होगी।

चपला—किन्तु युवराज ! जिन दानवों की तुम बात कह रहे हो, उनके पास आत्मा और हृदय नाम की कोई वस्तु नहीं है। उनके लिए नारी एक खिलौना-मात्र है राणा जी ! वैसे युवराज से यह सब-कुछ अनजान में हुआ है।

प्रताप—हो सकता है ! किन्तु प्रतिशोध चुकाने का यह ढंग बहुत भद्दा रहा ! मैं तब समझता अमर, जब तुम मातृ-भूमि का अपमान करने वाले का सिर लाकर मुझे दिखाते मैं प्रसन्नता से खिल उठता। उसका तो तुम कुछ बिगाड़ न सके और इन निरीह प्राणियों को लाकर मेरे सम्मुख खड़ा कर दिया।

अमर—राणाजी ! समय आने दीजिये उनके सिर भी आपके चरणों में लाकर रखूँगा।

प्रताप—वीर लोग समय की प्रतीक्षा नहीं करते।

अमर—ठीक है ऐसा ही होगा। (जाने लगते हैं)

प्रताप—ठहरो, चले कहाँ ? पहले इस उलझन को तो सुलझा जाओ, जिसे उलझाया है तुमने !

अमर— इसे अभी सुलझाये देता हूँ। (नर्तकी चपला की ओर इशारा

करके) इस नारी को देख रहे हैं आप ! यह आपकी ही जाति की है। इसकी दुर्दशा की कहानी समय मिले तो इसी से सुनियेगा आप ! मैंने बहुरूपिये के वेश में शत्रु-शिविर में अपना तमाशा दिखाते हुए इसकी गाथा सुनी है। और सुने, आप सब पर होते हुए उनके व्यंग्यमय अट्टहास। तब विवश होकर मुझे उन अट्टहासों का प्रत्युत्तर देना पड़ा। (रुककर) अपनी समझ में मैंने कोई अपराध नहीं किया राणा जी !,हाँ, यदि आप इसे अपराध मानते हैं तो इसके लिए जो उचित समझें दण्ड दें। मैं दण्ड ग्रहण करने को प्रस्तुत हूँ।

प्रताप—तुम्हें यही दण्ड दिया जाता है कि तुम सादर इन्हें इनके शिविर में पहुँचाकर आओ !

अमर—जो आज्ञा !

चपला—युवराज ! आपने दानव की जगह मानव से प्रतिशोध लिया। खानखाना रहीम में एक मानव-आत्मा निवास करती है। आपके आगमन से कुछ क्षण पूर्व ही वह मुझ से मेरी गाथा सुनकर हटे थे। और बहुत दुखी हुए। उन्होंने मुझे 'बहन' कहा—और उन दुष्ट सैनिकों को दण्ड देने के लिए उतावले हो उठे।

अमर—ठीक है। आप तो उसमें गौण थीं। मैंने शत्रु के प्रधान सेनापति के शिविर पर आक्रमण किया था। चाहे वह रहीम रहे हों या कोई और होता। मुझे तो अपना कार्य करना ही था।

प्रताप—यह बताइये कि आप लोगों को मार्ग में कोई कष्ट तो नहीं हुआ।

जीनत—नहीं राणा जी ! इस बारे में हमें कोई शिकायत नहीं है।

प्रताप—आप खानखाना की पत्नी हैं।

जीनत—जी !

प्रताप—उनसे कहियेगा इस घटना से हम बहुत लज्जित हैं। अबोध होने के नाते युवराज ने ऐसी भूल की। (नर्तकी से) तुम्हारा क्या नाम है ?

चपला—चपला !

प्रताप—हुँ ! हम तुम्हारी गाथा सुनना चाहेंगे।

चपला—(सांस भरकर) क्या करेंगे सुनकर राणा जी ! सुनने पर दुखी ही होंगे।

प्रताप—तुम तो रहोगी यहाँ ! मुझे भी अपना भाई समझो। समझो कि आज तुम अपने परिवार में लौट आई हो।

चपला—आपके द्वारा इस अभागिन को इतना स्नेह ! यह मेरा अहोभाग्य है राणा जी !

प्रताप—आप सब भी कुछ दिन हमारी अतिथि बनकर रहें ! (जीनत से) तुम्हारा नाम पूछ सकता हूँ बहन !

जीनत—मुझे जीनत कहते हैं।

प्रताप—क्यों जीनत बहन, हमारा आतिथ्य स्वीकार है न ?

जीनत—फिर कभी आऊँगी, अपने राणा के यहाँ सावन के दिनों में।

प्रताप—(हँसते हैं) बहुत सुन्दर ! जब चाहो तब।

चपला—(सोचती हुई सी) अब तो मैं भी अपनी जीनत भाभी के साथ ही लौटूँगी राणा जी ! कहीं रहीम भैया यह न समझें कि बहन अपने देश जाकर भूल गई। पर जब चाहूँ आपके यहाँ आ सकूँ मुझे यह अधिकार मिलना चाहिए !

प्रताप—पगली ! यह भी कोई कहने की बात है। (अमर से) हमारी बातें सुन रहे हो न अमर ! दैव योग से यदि कभी मैं न रहूँ तब मेरे प्रत्येक उत्तरदायित्व के साथ यह भी उत्तर-दायित्व तुम्हें उठाना होगा !

अमर—अहोभाग्य राणा जी !

प्रताप—'राणा जी' नहीं इस समय 'पिता' कहो।

अमर—(हंसते हुए) डाटना और प्यार करना ये दोनों कलाएँ कोई आप से सीखे।

प्रताप—तभी तो तुम्हें सिखा रहा हूँ।

[सब हंसते हैं इतने में प्रभामयी आती है]

प्रभामयी—आपने मुझे स्मरण किया था क्या ?

प्रताप—हाँ, देखो तुम्हारा अमर अपने साथ कुछ अतिथि लाया है। इन्हें अपने साथ ले जाओ !

प्रभामयी—आइये ! मेरे साथ आइये !

प्रताप—और सुनो प्रभा ! इन्हें शीघ्र ही लौटना भी है। इनकी विदायगी का प्रबन्ध भी करना है।

प्रभामयी—आप निश्चिन्त रहें। (चलने लगती हैं)

प्रताप—एक बात और सुनो ! ये तुम्हें महारानी नहीं कहेंगी, इन्होंने तुम्हारे लिए एक मधुर सम्बोधन चुन लिया है !

प्रभामयी—तब फिर आप भी आइये न ! विदायगी के लिए आप मुझ से अधिक अच्छा सोच सकेंगे !

प्रताप—तुम लोग चलो मैं अभी आता हूँ।

[सब जाती हैं, महाराणा और अमर रह जाते हैं]

प्रताप—शत्रु-सेनाओं ने प्रतिरोध तो प्रबल वेग से किया होगा।

अमर—हमने अवसर ही नहीं दिया ! फिर शेरपुरा में इतनी अधिक सेना भी नहीं थी उनकी। वहाँ तो खानखाना इन दिनों मनोरंजनार्थ आये हुए थे, वैसे आक्रमण से पूर्व हमने उनके शिविर का निरीक्षण बहुरूपिये के रूप में कर लिया था !

[तभी सगरसिंह का गुप्तचर वीरसिंह के साथ प्रवेश]

सगर—भैया ! वीरसिंह एक दुःखद सम्वाद लाये हैं।

प्रताप—क्यों क्या बात है वीरसिंह?

वीरसिंह—अन्नदाता! राव सुरताण और जगमल में भयंकर युद्ध हुआ था जिसमें……

प्रताप—कहो! रुकने की इसमें क्या बात है?

वीरसिंह—जगमल सुरताण के हाथों मारे गए। शाही सेनाओं की हार हुई! और सिरोही पर राव सुरताण का अधिकार हो गया है।

सगर—आपको जगमल की मृत्यु का बदला राव सुरताण से लेना ही होगा भैया!

प्रताप—सगर! पागल हो गए हो क्या! मैं एक स्वतन्त्रता-प्रेमी वीर से इसलिए लड़ूँ कि उसने शाही सेनापति को मार दिया है। उस सेनापति को, जो उनकी स्वन्तत्रता का अपहरण करना चाहता था। पहले अपना राष्ट्र, अपनी मातृ-भूमि, तत्पश्चात् दूसरी बातें।

सगर—हमें यह नहीं भूलना चाहिए राणाजी कि जगमल हमारा भाई था!

प्रताप—भाई था या भाई के नाम पर कलंक! उसे भाई कहते हुए भी मुझे लज्जा का अनुभव होता है सगर!

सगर—राणा जी!

प्रताप—तुम्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि वह देश-द्रोही था! कभी समय पाकर हम पर भी आक्रमण कर सकता था। हो सकता है तब उसकी मृत्यु हमारे ही हाथों होती! क्या उस समय तुम मुझे भी दण्ड देने की बात सोचते?

सगर—भैया! आपकी बातें मेरी समझ में नहीं आ रहीं!

प्रताप—युद्ध युद्ध ही है सगर! सुरताण ने प्रताप के भाई को नहीं अपने शत्रु अकबर के सेनाध्यक्ष को युद्ध-भूमि में मारा है। इसमें मुझे राव सुरताण का कोई अपराध नहीं दीखता।

सगर—राणा जी मुझे आप से इस उत्तर की आशा नहीं थी कि आपको अपने भाई की मृत्यु पर तनिक भी दुःख नहीं होगा।

प्रताप—सभी मेरे हैं ! मैं एक देश-द्रोही की मृत्यु का प्रतिशोध एक देश-प्रेमी से लूँ । मुझ से तो यह नहीं हो सकेगा।

सगर—अच्छा राणा जी, तब मैं जगमल का प्रतिशोध राव सुरताण से लूँगा !

प्रताप—(क्रोध से) सगर ! मैं जिस पुरातन वैमनस्य की जड़ें खोखली कर रहा हूँ तुम उन्हें फिर से सींचना चाहते हो। कुछ समझ से काम लो !

सगर—जहाँ भाई की मृत्यु पर एक बूँद भी आँसू नहीं हैं मैं ऐसी जगह नहीं रह सकता राणा ! मैं आज ही आपके मेवाड़ को त्याग दूँगा ! (शीघ्रता से जाता है)

प्रताप—सगर ! (सांस भरकर) उलझनों पर उलझनें चली आ रही हैं। एक सुलझाओ, दूसरी सामने खड़ी हँस रही है। एक दिन जीवन समाप्त हो जायगा लेकिन यह उलझनें समाप्त नहीं होंगी ! घटना-चक्र द्रुतगति से चल रहा है। (क्षणिक अवकाश) वीरसिंह ! तुम्हारी भेंट राव सुरताण से हुई !

वीरसिंह—जी ! दो दिन मैं उनका अतिथि बनकर रहा। उन्होंने मेरा बहुत आदर-सत्कार किया !

प्रताप—हुँ ! हमारे निमंत्रण का क्या उत्तर दिया है !

वीरसिंह—स्वीकार कर लिया है ! ताजख़ाँ जी से भी वहीं भेंट हुई थी। उन दोनों का कहना था कि यहाँ की शासन-व्यवस्था ठीक होते ही हम दोनों राणाजी के चरणों में उपस्थित होंगे। उन दोनों की मैत्री भी अटूट है।

प्रताप—हाँ, वह तो है ही !

सगर—जहांपनाह ! मैं जगमल का भाई हूँ और जगमल की मौत का बदला राव सुरताण से लेना चाहता हूँ। राणा ने साथ नहीं दिया। राणा से मेरा मन-मुटाव हो गया है, अब मैं आपके पास इस उम्मीद से आया हूँ।

अकबर—(सोचते हुए) हुँ, तो आप सुरताण से युद्ध करना चाहते हैं। हम आपकी सहायता कर सकते हैं, लेकिन एक बात ध्यान में रखिये कि सुरताण की पीठ पर प्रताप भी आ सकते हैं। तब आपका युद्ध सुरताण से न होकर प्रताप से होगा। उस समय आपके दिल में भाई की ममता तो न उमड़ आयगी?

सगर—आप मुझ पर यकीन कीजिये जहांपनाह ! अब मेरा प्रताप से कोई नाता नहीं है। मैं उनसे भी युद्ध करूँगा। मैं आपको उनके बहुत से रहस्य बताऊँगा ! आपको मेवाड़-विजय में आसानी होगी।

अकबर - ठीक, बहुत ठीक, (ऊँची आवाज में) दलेरखाँ।

[द्वारपाल का प्रवेश]

द्वारपाल—हुक्म आलीजाह !

अकबर—राजा साहब को साथ ले जाओ और इनके रहने का इन्तजाम करवा दो, और सुनो राजा मानसिंह से कहलवाओ कि हम उन्हें याद कर रहे हैं, और खानखाना को भी !

[द्वारपाल और सगर जाते हैं। तभी राजा मानसिंह का प्रवेश]

अकबर—फर्जन्द ! हमने अभी ही तुम्हें याद किया था, बहुत अच्छे मौके पर आये ?

मानसिंह—क्या कोई खास बात है जहांपनाह !

अकबर—हाँ, तुम जानते हो कि मेरी परेशानियाँ इन दिनों किस कदर बढ़ रही हैं।

मानसिंह—मेरे लिए क्या हुक्म है आलीजाह !

अकबर—तुम से कुछ खास सलाह करनी है। मेवाड़ हमारे सामने सिर उठाये खड़ा है। तुम देख ही रहे हो कि रहीम को भी वहाँ कोई कामयाबी हासिल नहीं हुई।

मानसिंह—हुँ!

अकबर—तुम्हारे सिवा किसी पर भरोसा नहीं है फर्ज़न्द! हाँ, तुमने इस जाने वाले आदमी को ध्यान से देखा?

मानसिंह—राणा का भाई सगरसिंह है, मुझ से मिल चुका है।

अकबर—इसका हमारे पास इस वक्त आना तुम्हारे विचार में कैसा है? यह मेवाड़ के सब रहस्य हमें देगा।

मानसिंह—कोई लाभ नहीं। जिन्होंने इसकी माँग को न मानकर इसे घर से बाहर निकाल दिया है क्या वह लोग नहीं जानते कि यह यहाँ के सब रहस्य बादशाह को देगा। वह अपनी रक्षा का प्रबन्ध पहले ही कर चुके होंगे। कोई छोटी-सी जागीर देकर अभी इससे पीछा छुड़वाइए।

अकबर—ठीक है, देखो फर्ज़न्द! मेरी जिन्दगी की सबसे बड़ी ख्वाहिश है प्रताप को नीचा दिखाना और तुम सबके होते हुए भी मुझे ऐसा लगता है कि मेरी यह इच्छा शायद पूरी न हो। (रुककर) फर्ज़न्द, मैं जानता हूँ कि तुम मुझ से नाराज हो। हाँ, यह जरूर है कि हल्दीघाटी के युद्ध के बाद मैं लोगों के कहने में आकर तुम से रूठा रहा हूँ, पर दिल से मैं तुम्हें और तुम्हारी बहादुरी को प्यार करता हूँ। बोलो, लेते हो अजमेर की सूबेदारी, सँभालते हो मेवाड़ की मुहिम!

मानसिंह—मुझे कोई इन्कार नहीं, किन्तु प्रश्न फिर वही सामने आयगा। फिर मेरे विरुद्ध आपके कान भरे जायँगे। अच्छा हो, आप किसी और को प्रधान सेनापति बना दें, मैं उसके सहायक के रूप में रहूँगा।

अकबर—(हँसकर) तुम्हारी नाराजगी अभी दूर नहीं हुई फर्जन्द !

मानसिंह—आपके हृदय में यह व्यर्थ का सन्देह है, मेरी नाराजगी का प्रश्न ही पैदा नहीं होता !

अकबर—अच्छा तो फिर जगन्नाथ कछवाहा इस जगह पर कैसे रहेंगे ?

मानसिंह—सुन्दर विचार है।

[रहीम का प्रवेश]

रहीम—आपने मुझे याद फर्माया, बन्दा हाजिर है आलीजाह !

अकबर—हुँ ! जानते हो मेवाड़ के जीते हुए कितने किले अपने हाथ से निकल चुके हैं !

रहीम—सामना तो हर जगह किया जा रहा है। कई जगह हमने नये आक्रमण भी किये हैं। पर सफलता हमारे हाथ नहीं आ रही और उसका सबसे बड़ा कारण है कि हम इन पहाड़ी युद्धों के अभ्यस्त नहीं हैं !

अकबर—(गुस्से से) मैं इन बातों को नहीं जानता मुझे मेवाड़ चाहिए, मेवाड़ ! मुझे अपने सामने झुका हुआ राणा प्रताप चाहिए। मैं यह बात सुनते-सुनते अब ऊब उठा हूँ समझे रहीम खानखाना ! जिस तरह भी हो मेवाड़ को दिल्ली की सल्तनत में आना ही चाहिए। अब अगर एक बार प्रताप ताकत पकड़ गया तो फिर हाथ में नहीं आयगा—सोचो, और इस बात को अच्छी तरह से सोचो ! (गुस्से से कहते हुए बाहर निकल जाते हैं)

मानसिंह—इन दिनों जहांपनाह की तबीयत ठीक नहीं है। (कहते-कहते जाते हैं)

रहीम—(स्वगत) इस दशा में किसी की भी तबीयत ठीक नहीं रहती। समझ में नहीं आता लोग अपने दुश्मन को कोमल कुसुम क्यों समझते हैं ? उसे दृढ़तम चट्टान क्यों नहीं

समझते। (सांस भरकर) अजमेर की सूबेदारी लोहे के चने चबाने के समान जटिल है। प्रताप लोहे की दीवार की तरह मजबूत है। कौन अपना सिर टकरायगा उससे। साथ-ही-साथ इन्सान भी कितना महान् है, बल्कि इन्सान के रूप में फरिश्ता! बादशाह को क्या मालूम कि उसकी इन्सानियत ने मुझे जीत लिया है।

[उद्विग्नावस्था में इधर-से-उधर घूमते हैं, कुछ देर बाद महाकवि पृथ्वीराज का प्रवेश]

पृथ्वीराज—कहो, अच्छे तो हो रहीम भाई ?

रहीम—(चौंककर) कौन ? ओह ! कविवर पृथ्वीराज, कब आये बीकानेर से !

पृथ्वीराज—कल शाम को ही पहुँचा था। आते ही पता लगा कि तुम आये हुए हो। सोचा मिल ही आऊँ।

रहीम—बहुत अच्छा किया दोस्त !

पृथ्वीराज—कारण क्या है मित्र, आज तुम इतने उद्विग्न क्यों हो?

रहीम—कोई विशेष बात नहीं, क्षणिक उद्विग्नता है, शान्त हो जायगी। अजमेर की सूबेदारी के साथ-साथ यह परेशानियाँ भी वहाँ के सूबेदार को मिलती हैं, और वह मुझे भी मिली हैं। प्रताप के कारण मुगल सल्तनत में अजमेर का महत्त्व बहुत बढ़ गया है।

पृथ्वीराज—तुम प्रथम श्रेणी के वीर हो, नीतिज्ञ सेनापति हो, इन सबके साथ-साथ महाकवि भी। इसलिए सब-कुछ हो सकते हो लेकिन बर्बर नहीं हो सकते, और सम्राट् चाहते हैं मेवाड़ के लिए दुर्धर्ष किस्म का सेनापति !

रहीम—इससे क्या होगा। शाहबाजखाँ ने प्रत्येक ढंग की नीति अपनाकर देख ली, कुछ लाभ नहीं हुआ (सांस भरकर धीमे स्वर में) मुझे यहाँ सफलता नहीं मिल सकती। मैं

अकबर—(हँसकर) तुम्हारी नाराजगी अभी दूर नहीं हुई फर्जन्द !

मानसिंह—आपके हृदय में यह व्यर्थ का सन्देह है, मेरी नाराजगी का प्रश्न ही पैदा नहीं होता !

अकबर—अच्छा तो फिर जगन्नाथ कछवाहा इस जगह पर कैसे रहेंगे ?

मानसिंह—सुन्दर विचार है।

[रहीम का प्रवेश]

रहीम—आपने मुझे याद फर्माया, बन्दा हाजिर है आलीजाह !

अकबर—हुँ ! जानते हो मेवाड़ के जीते हुए कितने किले अपने हाथ से निकल चुके हैं !

रहीम—सामना तो हर जगह किया जा रहा है। कई जगह हमने नये आक्रमण भी किये हैं। पर सफलता हमारे हाथ नहीं आ रही और उसका सबसे बड़ा कारण है कि हम इन पहाड़ी युद्धों के अभ्यस्त नहीं हैं !

अकबर—(गुस्से से) मैं इन बातों को नहीं जानता मुझे मेवाड़ चाहिए, मेवाड़ ! मुझे अपने सामने झुका हुआ राणा प्रताप चाहिए। मैं यह बात सुनते-सुनते अब ऊब उठा हूँ समझे रहीम खानखाना ! जिस तरह भी हो मेवाड़ को दिल्ली की सल्तनत में आना ही चाहिए। अब अगर एक बार प्रताप ताकत पकड़ गया तो फिर हाथ में नहीं आयगा—सोचो, और इस बात को अच्छी तरह से सोचो ! (गुस्से से कहते हुए बाहर निकल जाते हैं)

मानसिंह—इन दिनों जहांपनाह की तबीयत ठीक नहीं है। (कहते-कहते जाते हैं)

रहीम—(स्वगत) इस दशा में किसी की भी तबीयत ठीक नहीं रहती। समझ में नहीं आता लोग अपने दुश्मन को कोमल कुसुम क्यों समझते हैं ? उसे दृढ़तम चट्टान क्यों नहीं

समझते। (सांस भरकर) अजमेर की सूबेदारी लोहे के चने चबाने के समान जटिल है। प्रताप लोहे की दीवार की तरह मजबूत है। कौन अपना सिर टकरायगा उससे। साथ-ही-साथ इन्सान भी कितना महान् है, बल्कि इन्सान के रूप में फरिश्ता ! बादशाह को क्या मालूम कि उसकी इन्सानियत ने मुझे जीत लिया है।

[उद्विग्नावस्था में इधर-से-उधर घूमते हैं, कुछ देर बाद महाकवि पृथ्वीराज का प्रवेश]

पृथ्वीराज—कहो, अच्छे तो हो रहीम भाई ?

रहीम—(चौंककर) कौन ? ओह ! कविवर पृथ्वीराज, कब आये बीकानेर से ?

पृथ्वीराज—कल शाम को ही पहुँचा था। आते ही पता लगा कि तुम आये हुए हो। सोचा मिल ही आऊँ।

रहीम—बहुत अच्छा किया दोस्त !

पृथ्वीराज—कारण क्या है मित्र, आज तुम इतने उद्विग्न क्यों हो?

रहीम—कोई विशेष बात नहीं, क्षणिक उद्विग्नता है, शान्त हो जायगी। अजमेर की सूबेदारी के साथ-साथ यह परेशानियाँ भी वहाँ के सूबेदार को मिलती हैं, और वह मुझे भी मिली हैं। प्रताप के कारण मुगल सल्तनत में अजमेर का महत्त्व बहुत बढ़ गया है।

पृथ्वीराज—तुम प्रथम श्रेणी के वीर हो, नीतिज्ञ सेनापति हो, इन सबके साथ-साथ महाकवि भी। इसलिए सब-कुछ हो सकते हो लेकिन बर्बर नहीं हो सकते, और सम्राट् चाहते हैं मेवाड़ के लिए दुर्धर्ष किस्म का सेनापति !

रहीम—इससे क्या होगा। शाहबाजखाँ ने प्रत्येक ढंग की नीति अपनाकर देख ली, कुछ लाभ नहीं हुआ (सांस भरकर धीमे स्वर में) मुझे यहाँ सफलता नहीं मिल सकती। मैं

प्रताप की मानवता के आगे पराजित हो चुका हूँ। पृथ्वीराज ! तुम्हें अपने जीवन के साथ घटी हुई एक कहानी सुनाऊँगा।

पृथ्वीराज—मैं सुन चुका हूँ मित्र ! मुझे आज राजा मान ने सुनाई थी। वह स्वयं तुम्हारी और प्रताप दोनों की सहृदयता की प्रशंसा कर रहे थे।

रहीम—मेरी सहृदयता ?

पृथ्वीराज—नर्तकी चपला वाली घटना। उसे इस दशा में लाने वाले सैनिकों को दण्ड देना। तुम्हारी सहृदयता और साहस दोनों की परिचायक हैं यह बातें। सुना है इस बात से शाहंशाह भी तुम से बहुत प्रसन्न हुए थे।

रहीम—(हंसते हं) हाँ, सबके सामने दिखावे के तौर पर। बोले, सैनिकों पर अनुशासन होना ही चाहिए। किन्तु हृदय से नहीं। वह बहुत नीतिज्ञ हैं पृथ्वीराज ! (अवकाश) छोड़ो इन बातों में क्या रखा है। वह राजनीति के दाव-पेंच हैं। चलो हमारे यहाँ चलो। कुछ देर बैठकर साहित्य की चर्चा करें, कुछ सुने-सुनायें। (उल्लास से) मित्र ! इन सेनापतियों के नाते हमारा नाम इतिहास में रहे या न रहे किन्तु साहित्य की देवी हम पर प्रसन्न है। सरस्वती के वरद-पुत्रों के नाते हम सदैव के लिए अवश्य जियेंगे। मुझे तो इस बात पर सन्तोष है। आओ चलें।

[दोनों जाते हैं]

चतुर्थ दृश्य

स्थान—एक किले का भीतरी भाग।

[नेपथ्य में युद्ध के बाजे बज रहे हैं। 'भागो-दौड़ो' की आवाजें आ रही हैं। बहुत शोर मच रहा है, रंगमंच सूना है, इतने में लड़ते-लड़ते भीलराज और एक युवक शत्रु का प्रवेश]

मेघाजी—तेरा भला इसी में है कि तलवार फेंक दे। देखता नहीं, तेरी मौत तेरे सिर पर मँडरा रही है !

मुग़ल—चुप रह भीलों के मुखिया ! मेरी तलवार अभी तेरा खून पीकर अपनी प्यास बुझायगी।

मेघाजी- इस जीवन में तो तेरी यह लालसा पूरी होने की नहीं।

मुग़ल—मरने से पहले सभी यह कहते हैं ! लेकिन मौत उनका पीछा नहीं छोड़ती। किले पर तुम्हारा अधिकार हो गया है पर मेरी तलवार पर तो मेरा ही अधिकार है। तेरा भला इसी में है कि तू भाग जा, और मुझे यहाँ से जाने का मौका दे।

[तलवारें उसी प्रकार आपस में भिड़ी हुई हैं]

मुग़ल—शाबाश चाँद खाँ। अच्छे मौके पर आए।

[भीलराज पीछे मुड़कर देखते हैं तभी आगे बढ़कर कटार से वार करता है। भीलराज जख्मी होकर गिर पड़ते हैं]

मुग़ल—(अट्टहास) कैसा चकमा दिया। (भागना चाहता है तभी राणा प्रताप आ पहुँचते हैं)

प्रताप—भागकर कहाँ जायगा दुष्ट, हम तेरी मौत के समान तेरे सिर पर आ पहुँचे हैं।

[भाले से प्रहार करते हैं। शत्रु चीख के साथ रंगमंच से बाहर जा गिरता है। राणा भीलराज के पास बैठ जाते हैं]

प्रताप—भीलराज! भीलराज! (गला भर आता है) प्रिय मित्र! आँखें खोलो! पहचानो मैं कौन हूँ भीलराज!

मेघाजी—(पीड़ित स्वर में) स्वामी! अन्नदाता! घाव गहरा है, कटार सीने के पार हो गई है। धोखे से वार हुआ।

प्रताप—साहस से काम लो। तुमने सदैव हमारा धैर्य बँधाया है आज अपने लिए थोड़ा-सा साहस बटोरो भीलराज! तुम अच्छे हो जाओगे। चलो मैं तुम्हें उठाकर शिविर में ले चलता हूँ। (उठाने लगते हैं, भीलराज 'नाहीं' करते हैं)

मेघाजी—नहीं अन्नदाता, नहीं। विष-बुझी कटार का विष शरीर में व्याप्त हो रहा है। अब जीवन में बचने की कोई आशा नहीं रही। प्राण-पखेरू उड़ना ही चाहते हैं। (उल्लास से) यह मेरा सौभाग्य है राणा, अन्नदाता, मित्र! कि मैं तुम्हारी गोद में अपने प्राण त्याग रहा हूँ।

प्रताप—भीलराज! (स्वर में इतनी व्यथा है जैसे अभी रो पड़ेंगे) क्या सचमुच हमें सदैव के लिए छोड़कर जा रहे हो भील-राज, (चीखकर) भीलराज! (आंखों में आंसू आ जाते हैं)

मेघाजी—(धीमी आवाज में) आप मेवाड़ के गौरव हैं, देवाधिदेव के दीवान हैं, आपकी आँखों में आँसू अच्छे नहीं लगते।

प्रताप—इस समय मैं कुछ नहीं हूँ। केवल प्रताप हूँ, एक दुर्बल हृदय मानव, तुम्हारा मित्र।

मेघाजी—अन्नदाता!

प्रताप—मित्र! मेघा जी, मित्र कहो!

मेघाजी—मित्र! हम तुम कितनी लम्बी राह इकट्ठे चले, एक मंजिल, एक ध्येय, पर आज मैं धोखा दे चला; जिन्दगी की राह में तुम्हारा पूरा साथ न दे सका। (रुक जाते हैं)

प्रताप—मेघाजी ! मेघाजी !

मेघाजी—हाँ मित्र, एक वचन दोगे राणा !

प्रताप—बोलो मित्र, बोलो !

मेघाजी—भीलों का ध्यान रखना !

प्रताप—चिन्ता न करो, तुम्हीं कहो मैंने आज तक कभी कोई दुराव अपनी जनता के किसी वर्ग से कभी किया है। आज मेरे जीवन पर बहुत बड़ा आघात हुआ है। मेघाजी तुम्हारा विछोह…

मेघाजी—स्वामी ! धैर्य धारण करो। राष्ट्र के कर्णधार आपके जीवन में यह पहली मृत्यु नहीं है। इतने आघात सहे हैं, अपने हृदय पर एक और सह लो ! (तन्द्रा छा जाती है) बस अविरत गति से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते जाओ। (चुप हो जाते हैं)

प्रताप—मित्र मेघाजी ! भीलराज ! मैं तुम्हें शिविर की ओर लेकर ही जाऊँ।

मेघाजी—स्वामी ! अब जीवन के अधिक क्षण नहीं हैं।

प्रताप—सखे ! मुझे अपने हृदय की बात कर लेने दो, मुझे एक बार प्रयत्न कर लेने दो। (भीलराज को सहारा देकर उठाते हैं और धीरे-धीरे रंगमंच से बाहर हो जाते हैं)

[भाले से प्रहार करते हैं। शत्रु चीख के साथ रंगमंच से बाहर जा गिरता है। राणा भीलराज के पास बैठ जाते हैं]

प्रताप—भीलराज ! भीलराज ! (गला भर आता है) प्रिय मित्र ! आँखें खोलो ! पहचानो मैं कौन हूँ भीलराज !

मेघाजी—(पीड़ित स्वर में) स्वामी ! अन्नदाता ! घाव गहरा है, कटार सीने के पार हो गई है। धोखे से वार हुआ।

प्रताप—साहस से काम लो। तुमने सदैव हमारा धैर्य बँधाया है आज अपने लिए थोड़ा-सा साहस बटोरो भीलराज ! तुम अच्छे हो जाओगे। चलो मैं तुम्हें उठाकर शिविर में ले चलता हूँ। (उठाने लगते हैं, भीलराज 'नाहीं' करते हैं)

मेघाजी—नहीं अन्नदाता, नहीं। विष-बुझी कटार का विष शरीर में व्याप्त हो रहा है। अब जीवन में बचने की कोई आशा नहीं रही। प्राण-पखेरू उड़ना ही चाहते हैं। (उल्लास से) यह मेरा सौभाग्य है राणा, अन्नदाता, मित्र ! कि मैं तुम्हारी गोद में अपने प्राण त्याग रहा हूँ।

प्रताप—भीलराज ! (स्वर में इतनी व्यथा है जैसे अभी रो पड़ेंगे) क्या सचमुच हमें सदैव के लिए छोड़कर जा रहे हो भील-राज, (चीखकर) भीलराज ! (आंखों में आंसू आ जाते हैं)

मेघाजी—(धीमी आवाज में) आप मेवाड़ के गौरव हैं, देवाधिदेव के दीवान हैं, आपकी आँखों में आँसू अच्छे नहीं लगते।

प्रताप—इस समय मैं कुछ नहीं हूँ। केवल प्रताप हूँ, एक दुर्बल हृदय मानव, तुम्हारा मित्र।

मेघाजी—अन्नदाता !

प्रताप—मित्र ! मेघा जी, मित्र कहो !

मेघाजी—मित्र ! हम तुम कितनी लम्बी राह इकट्ठे चले, एक मंजिल, एक ध्येय, पर आज मैं धोखा दे चला; जिन्दगी की राह में तुम्हारा पूरा साथ न दे सका। (रुक जाते हैं)

प्रताप—मेघाजी ! मेघाजी !

मेघाजी—हाँ मित्र, एक वचन दोगे राणा !

प्रताप—बोलो मित्र, बोलो !

मेघाजी—भीलों का ध्यान रखना !

प्रताप—चिन्ता न करो, तुम्हीं कहो मैंने आज तक कभी कोई दुराव अपनी जनता के किसी वर्ग से कभी किया है। आज मेरे जीवन पर बहुत बड़ा आघात हुआ है। मेघाजी तुम्हारा विछोह…

मेघाजी—स्वामी ! धैर्य धारण करो। राष्ट्र के कर्णधार आपके जीवन में यह पहली मृत्यु नहीं है। इतने आघात सहे हैं, अपने हृदय पर एक और सह लो ! (तन्द्रा छा जाती है) बस अविरत गति से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते जाओ। (चुप हो जाते हैं)

प्रताप—मित्र मेघाजी ! भीलराज ! मैं तुम्हें शिविर की ओर लेकर ही जाऊँ।

मेघाजी—स्वामी ! अब जीवन के अधिक क्षण नहीं हैं।

प्रताप—सखे ! मुझे अपने हृदय की बात कर लेने दो, मुझे एक बार प्रयत्न कर लेने दो। (भीलराज को सहारा देकर उठाते हैं और धीरे-धीरे रंगमंच से बाहर हो जाते हैं)

पञ्चम दृश्य

स्थान—चावंड में राणा का भवन।

[शक्तिसिंह और भामाशाह बातें करते हुए आते हैं]

भामाशाह—शक्तिसिंह जी ! अब तो लगभग सारा मेवाड़ फिर से अधिकार में आ चुका है ! मुगल सेनाओं में भगदड़ पड़ी हुई है।

शक्तिसिंह—चित्तौड़, अजमेर और मंडलगढ़ पर हमारे आक्रमण सफल नहीं हुए ! वहाँ मुगल सेनाओं ने हमारा मुकाबला भी खूब किया। जगन्नाथ कछवाहा भी हमारे सशक्त प्रवाह को रोकने में असमर्थ रहा। (उल्लास से) जब-जब भी भैया के साथ किसी युद्ध में रहने का अवसर मिला है, बस मैं तो मन्त्र-मुग्ध बना उन्हीं का रण-कौशल देखता रहता हूँ।

भामाशाह—यही बात लोग तुम्हारे विषय में कहते हैं कि राणा जी की आशाएँ पूर्ण होने जा रही हैं, सेनापति ! तुम प्रतापसिंह के भाई शक्तिसिंह हो, एक दूसरे के अनुरूप हो। तुम दोनों का मोह भी एक दूसरे के प्रति सराहनीय है !

शक्तिसिंह—भैया आजकल उदास हैं, इन दिनों उनकी उदासी मुझ से देखी नहीं जाती !

भामाशाह—मेवाजी की मृत्यु का उन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है।

शक्तिसिंह—समझ में नहीं आता ऐसा क्यों है ? इनसे पहले भी तो इनके अनेकों मित्र देशभक्त और महाबली मरे हैं, उद्विग्न हुए हैं, दुखी रहे हैं, किन्तु बाद में वह विषाद के

बादल शीघ्र ही छटते रहे हैं, वैसे जीवन में भूला तो किसी को भी नहीं जा सकता।

भामाशाह—हल्दीघाटी के युद्ध के बाद से मेघाजी उनके प्रतिक्षण के साथी बन गए थे, काया और छाया का-सा सम्बन्ध रहा है, इन कुछ-एक वर्षों में इन दोनों का। भीलराज मेघवरण उनके अङ्गरक्षक उनके प्रधान सलाहकार सब-कुछ थे। हम नहीं भूल सकते इस मधुर व्यक्ति को। राणा तो राणा ही हैं, चेतक के लिए कितने ही मास आकुल रहे, फिर भीलराज तो मानव थे जिनसे सुख-दुख की अनेकों बातें कही-सुनी होंगी।

[तभी राव सुरताण और ताजखां का प्रवेश]

ताजखां—शाह जी ! क्या महाराणा जी इधर नहीं आये ? हम देख रहे हैं कि इधर कुछ दिनों से वह खोये-खोये-से रहते हैं।

सुरताण—समझ में नहीं आता कि कारण क्या है ? वैसे कल बहुत देर हम से बातें करते रहे। इधर-उधर की बहुत सी बातें होती रहीं, भविष्य के कार्यक्रम बनाते रहे, कई बातों पर हँसे, कई पर मुस्कराये।

भामाशाह—इसी बात का तो हमें दुख है कि अपने आन्तरिक दुख में वह किसी को साझीदार नहीं बनाते। हृदय में वेदना का ज्वार आ रहा होगा, लेकिन ऊपर से मुस्कराते रहेंगे।

ताजखां—मेरा विचार है कि हम लोग मिलकर एक साथ उनसे उनकी बेचैनी का सबब पूछें। और जो भी मुश्किल हो उसे हल करने की कोशिश करें। वैसे कल इस बारे में मैं उनसे बात करना चाहता था लेकिन बात शुरू करने के लिए ठीक मौका नहीं मिल सका।

सुरताण—सरदार चूड़ावत भी इस बात से बहुत दुखी हैं।

ताजखां—कई बार हम यहाँ आये हैं और महीनों उनके साथ रहे हैं, पर यह पहला मौका है कि राणा जी को इतना परेशान देखा।

[ताजखां और सुरताण बातें करते हुए लौट जाते हैं। दूसरी ओर से कुछ ही देर बाद प्रताप का प्रवेश]

प्रताप—शाह जी, प्राणों में एक कसक बस गई है (रुककर) शक्ता!

शक्तिसिंह—भैया!

प्रताप—हम शीघ्र ही चित्तौड़ पर एक प्रबल आक्रमण करना चाहते हैं। चित्तौड़ शीघ्रातिशीघ्र हमारे पास आना चाहिए। हमारी प्रतिज्ञा-पूर्ति में यह सबसे बड़ी बाधा है। सेनाओं को प्रतिक्षण प्रस्तुत रहने का आदेश दे दो।

शक्तिसिंह—जो आज्ञा! दुखी न हो भैया, चित्तौड़ शीघ्र ही अपने पास होगा।

भामाशाह—(साहस से) राणा जी! दीवान जी!

प्रताप—कहो! रुको मत क्या कहना चाहते हो शाहजी!

भामाशाह—देव! आपकी यह उदासी हम से देखी नहीं जाती। आप अपने हृदय की बात हम से कहते क्यों नहीं?

प्रताप—कोई ऐसी विशेष बात नहीं है शाह जी!

शक्तिसिंह—फिर भी भैया अपने प्राणों की कसक हमें भी बताइये न! हम आपकी प्रसन्नताओं के साझीदार हैं तो क्या उद्विग्नताओं के नहीं।

प्रताप—क्यों नहीं! आप लोग प्रतिक्षण के साथी हैं। (सोचते हुए) शक्ता! मैं एक दिन बैठा सोच रहा था कि राणा बनने के तुम में सब गुण हैं बस एक गुण कुछ कम है (फीकी हंसी हंसकर) तू अवस्था में एक वर्ष छोटा है। यही तेरा दुर्भाग्य रहा। कुछ दिन बड़ा होता तो मैं तुझे राणा कहता।

शक्तिसिंह—भैया ! मेरे प्राणों के प्राण ! आज तुम्हें क्या हो गया है, किस अपराध पर आज मुझे यह शब्द कहकर दण्डित कर रहे हैं !

प्रताप—वैसे ही बैठा-बैठा आज समाज के इस नियम पर सोच रहा था ! (रुककर) अच्छा बता ! कभी तेरे हृदय में यह आकांक्षा नहीं हुई कि मैं प्रताप से बड़ा होता ।

शक्तिसिंह—पहले तो कभी नहीं हुई । पर आज यह चाह हृदय में हो रही है ।

प्रताप—क्यों, राणा बनता इसलिए ?

शक्तिसिंह—नहीं ! इसलिए कि इन शब्दों में आज आपको—जैसे आप कभी-कभी प्यार से मुझे उन्मादी कहते हैं— उन्मादी कहता ।

भामाशाह—बहुत सुन्दर भाव रहा !

[प्रताप हँसते हैं । उदास वातावरण में कुछ मादकता आती है]

प्रताप—यह उन्माद इसलिए है बन्धुओ, कि उस दिन भीलराज की मौत ने मुझे आकुल कर दिया । मेघाजी-जैसा बल-शाली महाप्राण व्यक्ति एक साधारण सैनिक के धोखे में आकर मृत्यु पथगामी हुआ । मृत्यु किसी भी रूप में व्यक्ति के पास आ सकती है । फिर हम तो प्रतिक्षण मृत्यु की छाया में घूमते हैं । कभी भी मृत्यु का अवसर मिल सकता है । मैं चाहता हूँ अपना उत्तरदायित्व जितना शीघ्र हो सके पूरा कर दूँ । मुझे विश्वास नहीं कि अमर मेरे बाद मेवाड़ को स्वतन्त्र कर सकेगा ।

भामाशाह—यह सन्देह आपके हृदय में क्योंकर आया स्वामी ! अमर एक सुयोग्य पिता का सुयोग्य पुत्र है, उसमें आपके सभी गुण विद्यमान हैं ।

प्रताप—(आवेश में) शाह जी ! आप हमारा अपमान कर रहे हैं ।

हमने सदा विपत्तियों का मान-मर्दन किया है, कष्टों पर कष्ट झेले हैं, पर उनके आगे कभी झुके नहीं। (उच्छ्वास भरकर) अमर में वह बात होती तो चिन्ता ही किस बात की थी। वह वीर है, मैं उसकी वीरता पर आक्षेप नहीं करता, लेकिन दुख है कि उसमें कष्ट सहने की शक्ति कम है। उसके तनिक से आलस्य के कारण कभी भी मेवाड़ पर विपत्ति आ सकती है।

[इतने में अमर का प्रवेश]

प्रताप—आओ मेवाड़ के भावी राणा ! हम से आज अपने हृदय की बात कहो !

अमर - मेरे हृदय में कोई विशेष बात नहीं है देव ! किन्तु यह सम्बोधन मेरी समझ में नहीं आया।

प्रताप—क्यों ! क्या तुम मेवाड़ के भावी महाराणा नहीं हो ?

अमर—ईश्वर आपको चिरायु करें, हमारा समस्त जीवन आपकी छत्रछाया में बीते। मैं आपका अबोध अमर हूँ पिता !

प्रताप —मेरा तात्पर्य है कि तुम अपने उत्तरदायित्व को समझो, तुम देखो कि संघर्ष किसे कहते हैं ?

अमर—क्या आपने मुझे कभी कहीं भी किसी कठिन कार्य के समय अपने किसी विश्वस्त साथी से पीछे पाया है ?

प्रताप—नहीं, युवराज ! ऐसा तो नहीं है, किन्तु सुना है कि तुम इस निरन्तर के संघर्ष से ऊब उठे हो (स्वर में तीव्रता आ जाती है) अभी जगन्नाथ कछवाहा के आक्रमणों के समय जब हमें चावंड छोड़ना पड़ा था। सब लोग जिधर को पथ मिला, उधर को निकल गए थे। तुम्हारे साथ कौन था उस समय ?

अमर—पूरा परिवार और भीलराज मेवाजी।

प्रताप—भीलों की एक बस्ती में तुम्हें विश्राम मिला।

अमर—जी !

प्रताप—और तुम उस भाग-दौड़ से तंग आये हुए थे। एक दिन झोंपड़ी से सिर टकराने पर अपने छोटे-छोटे बहन-भाइयों और परिवार के दूसरे प्राणियों के सम्मुख तुमने कहा था—"कौन कहता है कि हम राजकुमार हैं, हमें राज-कुमारों के कौन-कौन से सुखोपभोग मिले हैं।" तुम मेवाड़ के भावी राणा और इन भावनाओं को जन्म दो! अमर! आँखें मूँदकर चलने वालों का सिर तो राजमहल की दीवार से भी टकरा सकता है।

अमर—कह नहीं सकता उस समय किस परिस्थितिवश इन शब्दों का जन्म हुआ। फिर भी मैं मानता हूँ—मेरे हृदय में इस भाव का आना, मेरे मुख से इन शब्दों का निकलना, अपराध है। मैं आग्रह करता हूँ कि मुझे मेरे अपराध के लिए दण्ड दिया जाय।

[सब आश्चर्य-चकित खड़े हैं। राणा जी उद्विग्न इधर-उधर घूम रहे हैं।]

प्रताप—मेघाजी, अपनी मृत्यु के समय बहुत दुखी थे। जब उन्होंने यह कहानी कही तो उनकी आँखों में आँसू थे। तुम्हारे इन शब्दों को सुनकर उन्हें बहुत दुःख हुआ था। उस दुःख को वह अपने हृदय में पाले हुए थे, हो सकता है कि सुअवसर देखकर वही तुझ से बात करते किन्तु उन्हें इस असामयिक मृत्यु ने अवसर नहीं दिया।

अमर—मैं उस दिवंगत आत्मा से भी क्षमा माँगता हूँ राणा जी! हमारा लालन-पालन उनके हाथों में हुआ है। वास्तव में उन्हें इस बात को सुनकर कष्ट होना ही चाहिए था। पर आप मुझे दण्ड दें।

भामाशाह—आपको अपने कहे पर पश्चात्ताप है यही पर्याप्त है।

हमने सदा विपत्तियों का मान-मर्दन किया है, कष्टों पर-कष्ट झेले हैं, पर उनके आगे कभी झुके नहीं। (उच्छ्वास भरकर) अमर में वह बात होती तो चिन्ता ही किस बात की थी। वह वीर है, मैं उसकी वीरता पर आक्षेप नहीं करता, लेकिन दुख है कि उसमें कष्ट सहने की शक्ति कम है। उसके तनिक से आलस्य के कारण कभी भी मेवाड़ पर विपत्ति आ सकती है।

[इतने में अमर का प्रवेश]

प्रताप—आओ मेवाड़ के भावी राणा ! हम से आज अपने हृदय की बात कहो !

अमर - मेरे हृदय में कोई विशेष बात नहीं है देव ! किन्तु यह सम्बोधन मेरी समझ में नहीं आया।

प्रताप—क्यों ! क्या तुम मेवाड़ के भावी महाराणा नहीं हो ?

अमर—ईश्वर आपको चिरायु करें, हमारा समस्त जीवन आपकी छत्रछाया में बीते। मैं आपका अबोध अमर हूँ पिता !

प्रताप –मेरा तात्पर्य है कि तुम अपने उत्तरदायित्व को समझो, तुम देखो कि संघर्ष किसे कहते हैं ?

अमर—क्या आपने मुझे कभी कहीं भी किसी कठिन कार्य के समय अपने किसी विश्वस्त साथी से पीछे पाया है ?

प्रताप—नहीं, युवराज ! ऐसा तो नहीं है, किन्तु सुना है कि तुम इस निरन्तर के संघर्ष से ऊब उठे हो (स्वर में तीव्रता आ जाती है) अभी जगन्नाथ कछवाहा के आक्रमणों के समय जब हमें चावंड छोड़ना पड़ा था। सब लोग जिधर को पथ मिला, उधर को निकल गए थे। तुम्हारे साथ कौन था उस समय ?

अमर—पूरा परिवार और भीलराज मेघाजी।

प्रताप—भीलों की एक बस्ती में तुम्हें विश्राम मिला।

अमर—जी !

प्रताप—और तुम उस भाग-दौड़ से तंग आये हुए थे। एक दिन झोंपड़ी से सिर टकराने पर अपने छोटे-छोटे बहन-भाइयों और परिवार के दूसरे प्राणियों के सम्मुख तुमने कहा था—"कौन कहता है कि हम राजकुमार हैं, हमें राजकुमारों के कौन-कौन से सुखोपभोग मिले हैं।" तुम मेवाड़ के भावी राणा और इन भावनाओं को जन्म दो ! अमर ! आँखें मूँदकर चलने वालों का सिर तो राजमहल की दीवार से भी टकरा सकता है।

अमर—कह नहीं सकता उस समय किस परिस्थितिवश इन शब्दों का जन्म हुआ। फिर भी मैं मानता हूँ—मेरे हृदय में इस भाव का आना, मेरे मुख से इन शब्दों का निकलना, अपराध है। मैं आग्रह करता हूँ कि मुझे मेरे अपराध के लिए दण्ड दिया जाय।

[सब आश्चर्य-चकित खड़े हैं। राणा जी उद्विग्न इधर-उधर घूम रहे हैं।]

प्रताप—मेघाजी, अपनी मृत्यु के समय बहुत दुखी थे। जब उन्होंने यह कहानी कही तो उनकी आँखों में आँसू थे। तुम्हारे इन शब्दों को सुनकर उन्हें बहुत दुःख हुआ था। उस दुःख को वह अपने हृदय में पाले हुए थे, हो सकता है कि सुअवसर देखकर वही तुझ से बात करते किन्तु उन्हें इस असामयिक मृत्यु ने अवसर नहीं दिया।

अमर—मैं उस दिवंगत आत्मा से भी क्षमा माँगता हूँ राणा जी ! हमारा लालन-पालन उनके हाथों में हुआ है। वास्तव में उन्हें इस बात को सुनकर कष्ट होना ही चाहिए था। पर आप मुझे दण्ड दें।

भामाशाह—आपको अपने कहे पर पश्चात्ताप है यही पर्याप्त है।

प्रताप—नहीं शाह जी ! मेरे हृदय को इतनी बात से शान्ति नहीं मिलने की। (रुककर) युवराज !

अमर—महाराणा !

प्रताप—इन सबके सामने मुझे वचन दो कि तुम शरीर में प्राण रहते मेवाड़ की रक्षा करोगे। जब तक सम्पूर्ण मेवाड़ स्वतंत्र न हो लेगा तब तक तुम्हारे हृदय को शान्ति नहीं मिलेगी।

अमर—मैं वचन देता हूँ पिता मैं अपने कर्तव्य का सदैव पालन करूँगा।

प्रताप—मुझे आप लोगों से भी कुछ कहना है। और विशेषकर शक्ता से, अमर का साथ तुम्हें जीवन भर देना होगा। चूड़ावत से अभी यह वचन लेकर आया हूँ।

शक्तिसिंह—आप भविष्य की बातें कर रहे हैं भैया, मैं तो आपके ही साथ-साथ हूँ जीवन में। अमर का साथ शक्तावत देंगे और शरीर में रहती रक्त की अन्तिम बूँद तक देंगे।

प्रताप—(शान्ति की साँस लेकर) ओह ! कैसा बोझ-सा धरा हुआ था हृदय पर ! शाह जी अतिथियों का सत्कार तो ठीक-ठीक हो रहा है न !

शक्तिसिंह—भैया ! यदि आज्ञा हो तो···

प्रताप—(मुस्कराकर) कहो सभी आज्ञाएँ हैं तुम्हें !

शक्तिसिंह—अतिथियों के मनोरंजनार्थ किसी कलात्मक उत्सव का आयोजन किया जाय।

प्रताप—अवश्य ! अवश्य ! आज फिर तुम लोगों ने मेरे आशा-दीप को अपना स्नेह दिया है। आओ सब चलें। अमर ! जाओ दूसरे सरदारों को भी हमारी कुटी में भेज दो।

अमर—जो आज्ञा ! (अमर का प्रस्थान)

प्रताप—आज फिर हृदय के आकाश पर उल्लास की घटाएँ छा गई हैं (भाव मुद्रा में) जय महादेव ! देवाधिदेव एकलिंग की जय हो !

[सब जाते हैं]